वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

# विवेक ज्योति

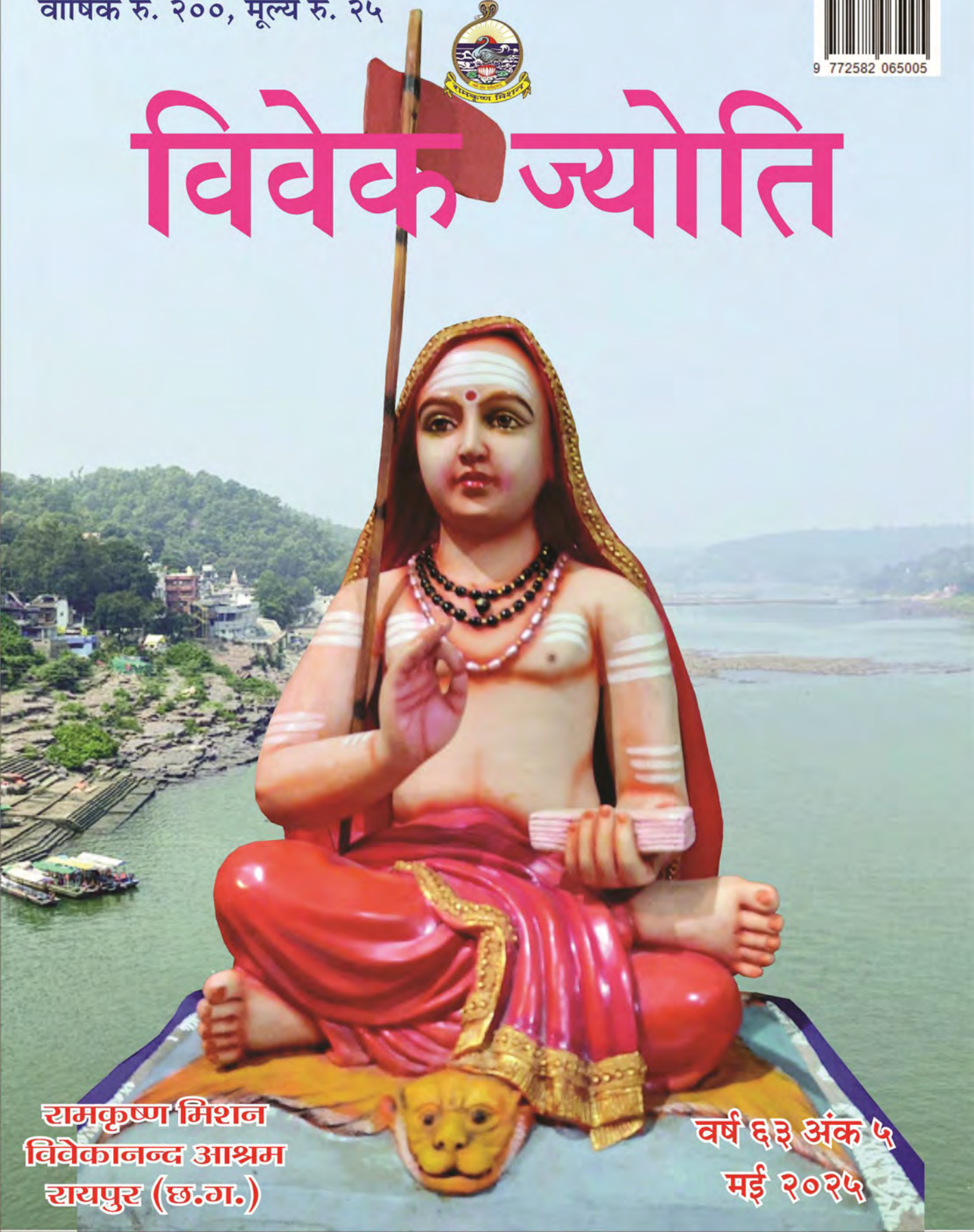

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक ५
मई २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ५

# विवेक-ज्योति

## हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
**स्वामी अव्ययात्मानन्द**

व्यवस्थापक
**स्वामी स्थिरानन्द**

सम्पादक
**स्वामी प्रपत्त्यानन्द**

सह-सम्पादक
**स्वामी पद्माक्षानन्द**

**वैशाख, सम्वत् २०८२**

**मई, २०२५**

## अनुक्रमणिका

* बुद्धदेव ने कहा अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी : विवेकानन्द १९८
* भगवत्पाद शंकराचार्य का अवतार, कार्य और प्रासंगिकता (उत्कर्ष चौबे) २०१
* भगवान गौतम बुद्ध (स्वामी देवभावानन्द) २०५
* (बच्चों का आंगन) महारानी अहिल्या बाई (श्रीमती मिताली सिंह) २१२
* महान पत्थर का मुख (नथानील नवाथ्रोन) २१३
* (युवा प्रांगण) युवाओं के लिए प्रेरणादायक प्रसंग (स्वामी गुणदानन्द) २१६
* कृष्ण विरही मीरा के पद (डॉ. सावती) २१९
* स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर (स्वामी तन्निष्ठानन्द) २२३
* होइहि सोइ जो राम रची राखा (राजकुमार गुप्ता) २२८
* (भजन एवं कविता) बुद्ध वन्दना (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * हे स्वयं सिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') * ब्रह्मज्ञान बाँटे जग शंकर आचार्य जी (श्रीधर प्रसाद द्विवेदी) २१८, * जो चरणों में सन्तों के बैठेंगे हम (चन्द्रमोहन) २२७

### शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १९७
पुरखों की थाती १९७
सम्पादकीय १९९
रामगीता २०९
प्रश्नोपनिषद् २२२
श्रीरामकृष्ण-गीता २२७
गीतातत्त्व-चिन्तन २२९
साधुओं के पावन प्रसंग २३३
समाचार और सूचनाएँ २३७

**रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)**

***विवेक-ज्योति दूरभाष :*** ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर



ISSN 2582-0656

## विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

| भारत में | वार्षिक | ५ वर्षों के लिए | १० वर्षों के लिए |
|---|---|---|---|
| एक प्रति २५/- | २००/- | १०००/- | २०००/- |
| विदेशो में (हवाई डाक से) | ६०यू.एस. डॉलर | ३०० यू.एस. डॉलर | |
| संस्थाओं के लिए | ३००/- | १५००/- | |

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

**बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया**
**अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर**
**शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.**
**अकाउण्ट नम्बर : 1385116124**
**IFSC : CBIN0280804**

## मई माह के जयन्ती और त्यौहार

| | |
|---|---|
| ०१ | रामकृष्ण मिशन स्थापना |
| ०२ | आदि शंकराचार्य |
| १२ | बुद्ध पूर्णिमा |
| ८,२३ | एकादशी |

## लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

**१.** धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

## आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

**आवरण पृष्ठ पर आदि शंकराचार्य जी की मूर्ति रामकृष्ण सारदा निकेतन, लेपा, मध्यप्रदेश की है।**

**'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें**

**विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org**

# विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

***मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द***

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

**रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959**

**ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org**

## विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

# सुदर्शन सोलार...
# ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

**भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!**

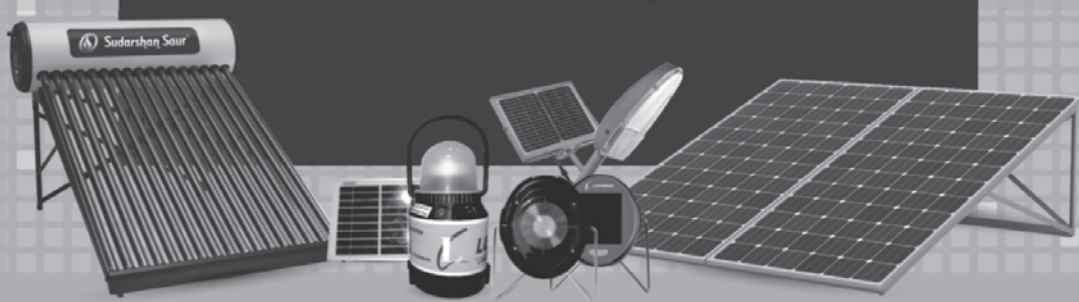


**सोलर वॉटर हीटर**
24 घंटे गरम पानी के लिए

**सोलर लाइटिंग्स**
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

**सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम**
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

**समझदारी की सोच!**

**३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!**

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

# विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

**हिन्दी मासिक**

**वर्ष ६३ मई २०२५ अंक ५**

## श्रीशंकराचार्य-स्तवः

**श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।**
**नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ।।**
**शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।**
**सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ।।**
**शङ्करः शङ्कराचार्यः सद्गुरुः शर्वसन्निभः ।**
**सर्वेषां शङ्कराः सन्तु सच्चिदानन्दरूपिणः ।।**

श्रुति, स्मृति और पुराणों के भण्डार, करुणा-निधान, लोक-कल्याणकारी भगवत्पाद शंकर को नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मसूत्र और भाष्य की रचना करने वाले शंकराचार्य रूपी शंकर और व्यास रूपी विष्णु इन दोनों भगवान की बार-बार वन्दना करता हूँ।

सर्वपापविनाशक शंकराचार्य शिव के समान सद्गुरु हैं। ऐसे सच्चिदानन्द रूपी आचार्य शंकर सब के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो।

## पुरखों की थाती

**सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाम्-अमंगलम्।**
**येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः।।८६६।।**
**(स्कंदपु.)**

– जिन लोगों के हृदय में, समस्त मंगलों के आगार भगवान विष्णु विराज करते हों, उनका सर्वदा सभी कार्यों के बीच कोई अमंगल नहीं हो सकता।

**सुश्रान्तोऽपि वहेद् भारं शीतोष्णं न पश्यति।**
**सन्तुष्टश्चरतो नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात्।।८६७।।**

– खूब थके होने पर भी भार ढोते जाना, सर्दी-गर्मी की परवाह न करना, जो भी मिले उसी में सन्तुष्ट रहना – ये तीन बातें गधे से सीखनी चाहिये।

**संग्रहैकपरः प्रायः समुद्रोऽपि रसातले।**
**दातारं जलदं पश्य गर्जन्तं भुवनोपरि।।८६८।।**
**(भोज.)**

– सदा संग्रह करने की प्रवृत्तिवाला, चाहे वह रत्नाकर समुद्र ही क्यों न हो, प्रायः रसातल में रहता है। जबकि वृष्टिदाता बादल को देखो, सदा धरती के ऊपर गरजता रहता है।

# बुद्धदेव ने कहा अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी : विवेकानन्द

अन्य कई महापुरुष थे, जो अपने को ईश्वर का अवतार कहते थे और विश्वास दिलाते थे कि जो उनमें श्रद्धा रखेंगे, वे स्वर्ग प्राप्त कर सकेंगे। पर बुद्ध के अधरों पर अन्तिम क्षण तक ये ही शब्द थे, 'अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी। अन्य कोई इसमें तुम्हारा सहायक नहीं हो सकता। स्वयं अपनी मुक्ति प्राप्त करो।' (७/१९८)

अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, 'बुद्ध शब्द का अर्थ है – आकाश के समान अनन्त ज्ञानसम्पन्न, मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गयी है। तुम भी यदि प्राणप्रण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हो।' (७/१९८)

बुद्ध ने अपनी सब कामनाओं पर विजय पा ली थी। उन्हें स्वर्ग जाने की कोई लालसा न थी और न ऐश्वर्य की ही कोई कामना थी। अपने राज-पाट और सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे, इस राजकुमार ने अपना सिन्धु-सा विशाल हृदय लेकर नर-नारी तथा जीव-जन्तुओं के कल्याण के हेतु, आर्यावर्त की वीथी-वीथी में भ्रमण कर भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करते हुए अपने उपदेशों का प्रचार किया। जगत में वे ही एकमात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशुबलि-निवारण के हेतु, किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन भी निछावर करने को तत्पर रहते थे। एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, ''यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के होम से और किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन्, उस पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो – शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके।'' राजा स्तब्ध हो गया! (७/१९८)

ईश्वर में विश्वास रखने से अनेक व्यक्तियों का मार्ग सुगम हो जाता है। किन्तु बुद्ध का चरित्र बताता है कि एक ऐसा व्यक्ति भी, जो नास्तिक है जिसका किसी दर्शन में विश्वास नहीं, जो न किसी सम्प्रदाय को मानता है और न किसी मन्दिर-मस्जिद में ही जाता है, जो घोर जड़वादी है, पर मोक्ष अवस्था प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के मतामत या कार्यकलापों का मूल्यांकन करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उनके विशाल हृदय का सहस्त्रांश पाकर भी मैं स्वयं को धन्य मानता। बुद्ध की आस्तिकता या नास्तिकता से मुझे कोई मतलब नहीं। उन्हें भी वह पूर्णावस्था प्राप्त हो गयी थी, जो अन्य जन भक्ति, ज्ञान या योग के मार्ग से प्राप्त करते हैं। (७/१९८-९९)

बुद्धदेव ने बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर दृढ़ स्वर से जो बात कही थी, उसे जो अपने रोम-रोम से बोल सकता है, वही वास्तविक धार्मिक होने योग्य है। संसारी होने की इच्छा उनके भी हृदय में एक बार उत्पन्न हुई थी। इधर वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि उनकी यह अवस्था, यह सांसारिक जीवन एकदम व्यर्थ है, पर इसके बाहर जाने का उन्हें कोई मार्ग नहीं मिल रहा था। मार एक बार उनके निकट आया और कहने लगा 'छोड़ो भी सत्य की खोज, चलो, संसार में लौट चलो और पहले जैसा पाखण्डपूर्ण जीवन बिताओ, सब वस्तुओं को उनके मिथ्या नामों से पुकारो, अपने निकट और सबके निकट दिन-रात मिथ्या बोलते रहो'। यह मार उनके पास पुनः आया, पर उस महावीर ने अपने अतुल पराक्रम से उसे उसी क्षण परास्त कर दिया। उन्होंने कहा, 'अज्ञानपूर्वक केवल खा-पीकर जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है, पराजित होकर जीने की अपेक्षा युद्ध क्षेत्र में मरना श्रेयस्कर है।' (२/७८-७९)

सम्पादकीय

# सत्य में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''सत्य बोलना कलियुग की तपस्या है, इस जीवन में अन्य साधनाओं का अभ्यास करना कठिन है, परन्तु सत्य पर दृढ़ रहने से मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। गोस्वामीजी ने कहा भी है कि सत्य वचन, ईश्वराधीनता तथा परस्त्री को मातृरूप से देखना, ये महान गुण हैं। यदि इनसे हरि न मिले, तो तुलसी को झूठा समझो।''[१] सत्य के प्रति ऋषि का यह उद्घोष है –

**सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी।**
**सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः।।**

– सत्य से ही सूर्य तप रहा है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी है। सत्य सबसे बड़ा धर्म है। सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है।

ईश्वर सत्य है। ईश्वर शिव है, मंगल है, कल्याणकर है। ईश्वर सुन्दर है। ईश्वर सत्यं शिवं सुन्दरम् है। यदि कोई ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे सर्वप्रथम सत्यवादी होना होगा, सत्य में प्रतिष्ठित होना होगा, तभी ईश्वर की प्राप्ति होगी। सत्यवादी के कुल में ही ईश्वर का साकार रूप में अवतरण होता है। वह ईश्वर की ही कृपा से उनके सगुण-निर्गुण दोनों रूपों का आनन्द ले पाता है। ऐसे ही एक सत्यवादी महान पुरुष थे, जिनके घर में साक्षात् सत्यस्वरूप भगवान ने अवतार लिया। सत्य की कितनी महिमा है !

पश्चिम बंगाल में 'देरे' नामक ग्राम है। वहाँ के जमींदार गोविन्द राय थे। ये प्रजा पर बहुत अत्याचार करते थे। यदि किसी कारण से किसी पर क्रोधित हो जाते, तो उसका सर्वनाश कर देते थे। उसी ग्राम में एक सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण, आचारी और सम्पन्न ब्राह्मण क्षुदिराम चट्टोपाध्याय जी रहते थे। वे बड़े सत्यवादी, सन्तोषी, त्यागी और क्षमाशील थे। वे ईश्वर के भक्त थे। उनकी ईश्वर पर प्रबल निष्ठा थी। किन्तु उनके जीवन में एक महासंकट तब आया, जब उस गाँव के जमींदार गोविन्द राय ने उन्हें झूठी गवाही देने के लिये कहा। प्रजा-प्रपीड़क गोविन्द राय ने गाँव के किसी व्यक्ति पर रुष्ट होकर न्यायालय में एक झूठा मुकदमा किया। उसमें एक विश्वासी गवाह की आवश्यकता पड़ी। उन्होंने सत्यनिष्ठ क्षुदिरामजी को उस मुकदमे में गवाही देने के लिये निवेदन किया, जिससे न्यायालय को विश्वास हो जाये।

जमींदार के ऐसे निवेदन से क्षुदिरामजी को बहुत आघात लगा। उन्होंने सत्य बात के लिये भी कभी न्यायालय में गवाही नहीं दी थी। सत्यवादी, सत्यनिष्ठ, धर्मपरायण क्षुदिरामजी ने इसका दुष्परिणाम जानकर भी झूठी गवाही देने से मना कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर गोविन्द राय ने क्षुदिरामजी के ऊपर झूठा आरोप लगाकर न्यायालय में मुकदमा किया और मुकदमा जीतकर क्षुदिरामजी की सारी पैतृक सम्पत्ति नीलाम कर दी। क्षुदिरामजी को रहने तक के लिये उस गाँव में रत्ती भर जमीन नहीं बची। उनकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। गाँव के लोग इस घटना से बड़े व्यथित हुये, लेकिन उस अत्याचारी गोविन्द के विरुद्ध जाकर उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सके।

अन्त में असहाय क्षुदिरामजी ने उस ग्राम का त्याग कर दिया। उन्होंने अपने दस वर्ष के पुत्र रामकुमार, चार वर्षीय कन्या कात्यायनी और अपनी धर्मपत्नी के साथ उस ग्राम को छोड़कर कामारपुकुर में अपने मित्र सुखलालजी के यहाँ शरण ली। इस संकट में स्वनामधन्य सन्मित्र श्री सुखलाल जी ने मित्र-धर्म का निर्वाह करते हुये अपने घर के एक भाग में उन्हें रहने का स्थान दिया और नित्य भोजन-व्यवस्था हेतु सदा के लिये डेढ़ बीघा जमीन भी दी।

इतना घोर संकट आने पर भी इस पूज्य, वन्दनीय सत्यनिष्ठ ब्राह्मण ने झूठ नहीं बोला। इसीलिये उनके घर में पुत्र के रूप में युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण ने जन्म लिया। उस जमींदार की सभी सन्तानें नष्ट हो गयीं, उसका वंश नष्ट हो गया। उसकी सारी सम्पत्ति दूसरों के हाथों में चली गयी। आज उसी जमींदार की भूमि पर भव्य श्रीरामकृष्ण देव का मंदिर सुशोभित है। सत्यपारायण व्यक्ति की सत्य ही रक्षा करता है। अत: सत्य सदा आचरणीय है।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव स्वयं कहते हैं – ''माँ काली के पादपद्मों में फूल चढ़ाकर जब मैं सब कुछ त्याग करने लगा, तब कहा, 'माँ यह लो अपनी शुचिता और यह लो अशुचिता, यह लो अपना धर्म और यह लो अधर्म, यह लो अपना पाप और यह लो पुण्य, यह लो अपना भला और यह लो बुरा, मुझे शुद्धा भक्ति दो।' परन्तु यह लो अपना सत्य और यह लो अपना असत्य, यह मैं नहीं कह सका।'' इतने सत्यानुरागी थे श्रीरामकृष्ण ![२]

क्षुदिराम चट्टोपाध्याय जैसे महान सत्यनिष्ठ पिता के पुत्र हैं श्रीरामकृष्ण देव। ये युगावतार हैं। साक्षात् ईश्वर हैं। ईश्वर सत्यस्वरूप होते हैं। श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा चरम सीमा तक दृष्टिगोचर होती है। ये ऐसे महान पुरुष थे, जिन्हें अनजान में भी सत्य से विपरीत कुछ होने पर तत्क्षण कुछ दिखता नहीं था, घर जाने का मार्ग तक नहीं दिखता था। अनजाने में भी अन्य व्यक्तियों के द्वारा इनके आदर्श-विरुद्ध कार्य करने पर पर इनके शरीर में बिच्छू जैसे डंक मारने की घटना देखी गयी है।

बचपन से ही श्रीरामकृष्ण की इतनी सत्य निष्ठा थी कि उन्होंने एक बार जो कह दिया, उसके पालन में वे दृढ़ रहते थे। जब वे नौ वर्ष के हुये, तो उनके यज्ञोपवीत का आयोजन होने लगा। जब यज्ञोपवीत होता है, तब माता बालक को प्रथम भिक्षा देती है। यह परम्परा है। इसके कुछ महीने पहले कामारपुकुर ग्राम की लुहार की पुत्री धनी ने गदाधर (श्रीरामकृष्ण) से अनुरोध किया कि यज्ञोपवीत के समय पहली भिक्षा वह मुझसे लेकर मुझे भिक्षा-माता से धन्य करे। सरल बालक गदाधर ने 'हाँ' भी कह दिया। निर्धन धनी तभी से भिक्षा देने के लिये धन एकत्र करने लगी। लेकिन जब यज्ञोपवीत के समय भिक्षा लेने की बात हुई, तो उनके बड़े भाई रामकुमारजी ने उनके वंश में कभी इस प्रकार की प्रथा प्रचलित नहीं रहने के कारण धनी लुहारिन से भिक्षा लेने से मना कर दिया। सत्यप्रतिज्ञ बालक गदाधर ने कहा कि धनी माता से भिक्षा नहीं लेने से सत्य-भंग होगा। मेरा कथन असत्य हो जायेगा। मुझे सत्य-भंग के अपराध में अपराधी होना पड़ेगा। असत्यवादी कभी भी ब्राह्मणोचित यज्ञसूत्र धारण करने का अधिकारी नहीं हो सकता। बालक गदाधर के तर्कयुक्त हठ करने पर अन्त में गाँव के धर्मदास लाहा जी से विचार-विमर्श कर सब लोग सहमत हुये और गदाधर ने धनीमाता से प्रथम भिक्षा लेकर उन्हें धन्य किया और अपनी सत्य-रक्षा की। इतने सत्यनिष्ठ थे श्रीरामकृष्ण !

सत्य-पालन के लिये लोगों ने अपने प्राण त्याग दिये, किन्तु सत्य से विचलित नहीं हुये। राजा दशरथ ने सत्य पालन के लिये अपने प्रिय पुत्र राम को वनवास भेजा और अन्त में अपने प्राण भी त्याग दिये, किन्तु सत्य से विचलित नहीं हुये।

सत्यनिष्ठ कभी सांसारिक झंझावातों से विचलित नहीं होता। राजा हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में भी असत्य नहीं बोला। वे स्वप्न में दिये दान के लिये अपना सर्वस्व दान कर कंगाल हो गये। उन्होंने धर्मपरायणा पत्नी को डोम के हाथों बेच दिया, अपने सुशीलवान पुत्र को भी बेच दिया, किन्तु असत्य का आश्रय नहीं लिया, कभी मिथ्या नहीं बोला। श्रीरामकृष्ण देव के पिताजी क्षुदिराम चट्टोपाध्याय जी ने अपनी सर्वस्व पैतृक सम्पत्ति गँवाकर कंगाल होकर ग्राम छोड़ दिया, लेकिन असत्य नहीं बोला। ये महापुरुष ही हमारी संस्कृति के गौरव हैं, हमारे जीवन के आदर्श हैं। आज भी सत्यनिष्ठ लोग हैं, जो समाज के आदर्श हैं। ऐसे बहुत-से उदाहरण विद्यमान हैं। तभी तो राजा भर्तृहरि जी ने कहा –

**तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति,**
**सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम्।।**[३]

– सत्यव्रत-धारक अपने प्राणों को सुख से त्याग देते हैं, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा का त्याग नहीं करते।

इसलिये सत्य सर्वदा सर्वकाल-आचरणीय और सर्वथा अत्याज्य है। अत: **सत्यं ब्रूयात्** – सत्य बोलो, क्योंकि सत्य ही ईश्वर है और सत्य ही कलियुग की तपस्या है। ○○○

**सन्दर्भ ग्रन्थ –** **१.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, २/८९३, १२ अप्रैल, १८८५, **२.** वही, २/९३५-३६, १३ जून, १८८५ **३.** नीतिशतकम् श्लोक १०९

# भगवत्पाद शंकराचार्य का अवतार, कार्य और प्रासंगिकता

**उत्कर्ष चौबे**

**काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

श्रीशंकराचार्य जयन्ती विशेष

कुछ लोगों को यह संदेह हो सकता है कि भगवान शंकराचार्य ने आविर्भूत होकर ऐसा कौन-सा अभिनव सिद्धान्त प्रदान किया या धर्म का प्रचार किया, जिससे यह प्रतीत हो सके कि उन्होंने जगत का अवतारोचित अभूतपूर्व तथा लोकोत्तर कल्याण किया था? अद्वैतवाद अनादिकाल से ही तत्-तत् अधिकारियों में प्रसिद्ध था। फिर उन्होंने प्रस्थानत्रय पर भाष्य का निर्माण कर अथवा अन्य कौन-सा विशेष कार्य किया? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि अधिकारी-भेद से अद्वैत, द्वैत आदि मत अनादिकाल से ही प्रसिद्ध हैं, तथापि विशुद्ध ब्रह्माद्वैतवाद अवैदिक दार्शनिक सम्प्रदाय के आविर्भाव से एक प्रकार से लुप्त-सा हो गया था। योगाचार तथा माध्यमिक सम्प्रदाय में एवं किसी-किसी तान्त्रिक सम्प्रदाय में अद्वैतवाद के नाम से जिस सिद्धान्त का प्रचार हुआ था, वह विशुद्ध औपनिषदिक ब्रह्मवाद से अत्यन्त भिन्न है। ऐसी विषम परिस्थितियों में अवतरित होकर भगवान सदाशिव के अवतार आचार्य शंकर श्रुतिसम्मत शारीरकभाष्य की रचना कर अद्वैत के वास्तविक आदर्श को प्रतिपादित कर धर्म रक्षण करते हैं –

**व्याकुर्वन् व्याससूत्रार्थं श्रुतेरर्थं यथोचिवान्।**
**श्रुतेर्न्यायः स एवार्थः शंकरः सवितानन:।।**[१]

– सूर्यसदृश प्रतापी श्रीशिवावतार आचार्य शंकर श्री बादरायण-वेदव्यासविरचित ब्रह्मसूत्रों पर श्रुतिसम्मत युक्तियुक्त भाष्य संरचना करते हैं।

शंकररूपी शंकरावतार वैदिक धर्म संस्थापक, परमज्ञानमूर्ति, प्रज्ञा तथा करुणा के विग्रहस्वरूप महापुरुष सभी वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यमात्र के लिये सर्वदा प्रणम्य हैं। शास्त्रों में वर्णित है कि

**सर्गे प्राथमिके प्रयाति विरतिं मार्गे स्थिते दौर्गते**
**स्वर्गे दुर्गमतामुपेयुषि भृशं दुर्गेऽपवर्गे सति।**
**वर्गे देहभृतां निसर्गमलिने जातोपसर्गेऽखिले**
**सर्गे विश्वसृजस्तदीयवपुषा भर्गोऽवतीर्णो भुवि।।**

– सनातन संस्कृति के पुरोधा सनकादि महर्षियों का प्राथमिक सर्ग जब उपरति को प्राप्त हो गया, अभ्युदय तथा निःश्रेयसप्रद वैदिक सन्मार्ग की दुर्गति होने लगी, फलस्वरूप स्वर्ग दुर्गम होने लगा, अपवर्ग अगम हो गया, तब इस भूतल पर भगवान भर्ग (शिव) शंकर रूप से अवतीर्ण हुए।

भगवान शिव द्वारा कलियुग के प्रथम चरण में अपने चार शिष्यों के साथ जगद्गुरु आचार्य शंकर के रूप में अवतार लेने का वर्णन पुराणशास्त्र में भी वर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं –

**कल्यब्दे द्विसहस्रान्ते लोकानुग्रहकाम्यया।**
**चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शंकरोऽवतरिष्यति।।**[२]

– कलि के दो सहस्र वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् लोक-अनुग्रह की कामना से श्रीसर्वेश्वर शिव अपने चार शिष्यों के साथ अवतरित होंगे।

वैदिक धर्म के प्रचार तथा प्रभाव के मन्द हो जाने से समाज प्रायः श्रुतिसम्मत विशुद्ध ब्रह्मवाद को भूलकर अवैदिक सम्प्रदायों द्वारा प्रचारित अद्वैतवाद को ग्रहण करने लगा था। हीनयान तथा महायान के अंतर्भूत अष्टादश सम्प्रदाय, शैव, पाशुपत, कालिक, कालामुख आदि माहेश्वरसम्प्रदाय, पांचरात्र, भागवत आदि वैष्णवसम्प्रदाय तथा गाणपत्य, सौर आदि विभिन्न धर्मसम्प्रदाय भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में फैल गये थे। स्थानविशेष अर्हत सम्प्रदाय का प्रभाव भी कम न था। देश के खण्ड-खण्ड में विभक्त होने के कारण तथा

मनुष्यों की रुचि और प्रवृत्ति में विकार आ जाने के कारण श्रौतधर्मनिष्ठ एवं श्रौतधर्मरक्षक सार्वभौम चक्रवर्ती जैसा राजा भी कोई नहीं रह गया था, जिसके प्रभाव तथा आदर्श से जनसमुदाय शुद्ध धर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो सकता था।

ऐसी परिस्थिति में भगवान शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों में वेदानुमत निर्विशेष अद्वैत वस्तु का शास्त्र तथा युक्ति बल से दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन कर, केवल विविध द्वैतवादों का ही नहीं, अपितु भ्रान्त अद्वैतवाद का भी खण्डन ही किया है। शुद्ध वैदिक ज्ञानमार्ग का अन्वेषण करनेवाले विरक्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु पुरुषों के लिये यही सर्वप्रधान उपकार माना जा सकता है, क्योंकि भगवान शंकर जैसे लोकोत्तर धीशक्तिसम्पन्न पुरुष को छोड़कर दूसरे किसी के लिए भी तत्कालीन दार्शनिकों के युक्तिजाल का खण्डन करना सरल नहीं था। लिंगपुराण में कहा गया है –

**निन्दन्ति वेदविद्याञ्च द्विजाः कर्माणि वै कलौ।**
**कलौ देवो महादेवः शंकरो नीललोहितः।**
**प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।**
**ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शंकरम्।।**
**कलिदोषान्विनिर्जित्य प्रयान्ति परं पदम्।**[३]

– ''कलि में ब्राह्मण वेदविद्या और वैदिक कर्मों की जब निन्दा करने लगते हैं, तब रुद्रसंज्ञक विकटरूप नीललोहित महादेव धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अवतीर्ण होते हैं। जो ब्राह्मणादि जिस किसी प्रकार से उनका आस्थासहित अनुसरण करते हैं, वे परमगति को प्राप्त होते हैं।'' अतः कलियुग के प्रथम चरण में विलुप्त तथा विकृत वैदिक ज्ञान-विज्ञान को उद्भासित और विशुद्ध कर वैदिक वाङ्मय को दार्शनिक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक धरातल पर समृद्ध करनेवाले एवं राजर्षि सुधन्वा को सार्वभौम सम्राट ख्यापित करने वाले चतुराम्नाय-चतुष्पीठ संस्थापक नित्य तथा नैमित्तिक युग्मावतार श्रीशिवस्वरूप भगवत्पाद शंकराचार्य की अमोघदृष्टि तथा अद्भुत कृति सर्वथा स्तुत्य है।

केवल इतना ही नहीं, अद्वैत सिद्धान्त का अपरोक्षतया स्वानुभव करके जगत् में उसके प्रचार के लिए तत्-तत् देश और काल के अनुसार मठादि-स्थापन द्वारा ज्ञानोपदेश का स्थायी प्रबन्ध करना भी साधारण मनुष्य का कार्य नहीं था। विश्वेश्वरावतार शंकराचार्य ने जिन अद्वैत सिद्धान्तों की व्याख्या की, वीरेश्वरावतार स्वामी विवेकानन्द ने उन्हीं सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग किया।

पारमार्थिक, व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक भेद से सत्ताभेद की कल्पना कर भगवान शंकराचार्य ने एक विशाल समन्वय का मार्ग खोल दिया था। वह अपने-अपने अधिकार के अनुसार वेदमार्गरत निष्ठावान साधकों के लिए परम हितकारी ही हुआ। क्योंकि व्यवहारभूमि में अनुभव के अनुसार द्वैतवाद को अंगीकार करते हुए और तदनुरूप आचार, अनुष्ठान आदि का उपदेश देते हुए भगवान ने दिखाया है कि वस्तुतः वेदान्तोपदिष्ट अद्वैतभाव से शास्त्रानुमत द्वैतभाव का विरोध नहीं है, क्योंकि शुद्ध ब्रह्मज्ञान के उदय से संस्कार या वासना की निवृत्ति, विविध प्रकार के कर्मों की निवृत्ति तथा चित का उपशम हो जाने पर अखिल द्वैतभावों का एक परमाद्वैतभाव में ही पर्यवसान हो जाता है। परन्तु जब तक इस प्रकार की परम ब्रह्मविद्या का उदय न हो, तब तक द्वैतभाव को मिथ्या कहकर द्वैतभावमूलक शास्त्रविहित उपासना आदि का त्याग करना उनके सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि जो अनधिकारी है अर्थात् जिसको आत्मानात्मविवेक नहीं हुआ है, जो साधनसम्पन्न नहीं है और जिसमें मुक्ति की इच्छा उदित नहीं हुई है, उसके लिए वेदान्त-ज्ञान का अधिकार तक नहीं है।

कर्म से शुद्धचित्त होकर उपासना में तत्पर होने से धीरे-धीरे ज्ञान की इच्छा तथा उसका अधिकार उत्पन्न हो जाता है। अतएव व्यवहारभूमि में अपने-अपने प्राक्तन संस्कारों के अनुसार जो जिस प्रकार द्वैत अधिकार में रहता है, उसके लिये वही ठीक है। भगवान शंकराचार्य जी का कहना यही है कि वह शास्त्रसम्मत होना चाहिए, क्योंकि शास्त्रविपरीत पौरुष से उन्नति की आशा नहीं है।

वर्णाश्रमधर्म का लोप होने से समाज में धर्मविपर्यय अवश्यम्भावी है। भगवान शंकराचार्य का सिद्धान्त है कि वर्णाश्रम धर्म का संरक्षण करना ही परमेश्वर का नररूप में अवतार होने का मुख्य प्रयोजन है। भगवान शंकराचार्य के जीवन-चरित, शिष्यों के प्रति उनके उपदेश तथा ग्रन्थ आदि के पर्यालोचन से प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं वर्णाश्रमधर्म के हितार्थ समग्र जीवन एवं आत्मशक्ति का प्रयोग किया था, यह उनके अवतारत्व का ही द्योतक है। कूर्मपुराणानुसार –

**कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।**
**न देवता भवेन्नृणां देवतानाञ्च दैवतम्।।**
**करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः।**

**श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।।**
**उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्।**
**सर्ववेदान्तसारो हि धर्मान् वेदनदिर्शितान।।**
**ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः।**
**विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्।।**[४]

– कलि में देवों के देव महादेव लोकों के परमेश्वर रुद्र शिव मनुष्यों के उद्धार के लिए उन भक्तों के हित की कामना से श्रोत-स्मार्त-प्रतिपादित धर्म की प्रतिष्ठा के लिए विविध अवतारों को ग्रहण करेंगे। वे शिष्यों को वेदप्रतिपादित सर्ववेदान्तसार ब्रह्मज्ञानरूप मोक्ष धर्मों का उपदेश करेंगे। जो ब्राह्मण जिस किसी भी प्रकार उनका सेवन करते हैं, वे कलिप्रभव दोषों को जीतकर परम पद को प्राप्त करते हैं।

सत्ययुग की अपेक्षा त्रेता में तथा त्रेता की अपेक्षा द्वापर में, द्वापर की अपेक्षा कलि में मनुष्यों की प्रज्ञाशक्ति तथा प्राणशक्ति एवं धर्म और अध्यात्म का ह्रास सुनिश्चित है। यही कारण है कि कृतयुग में शिवावतार भगवान दक्षिणामूर्ति ने केवल मौन व्याख्यान से शिष्यों के संशयों का निवारण किया। त्रेता में ब्रह्मा, विष्णु और शिव अवतार भगवान दत्तात्रेय ने सूत्रात्मक वाक्यों के द्वारा अनुगतों का उद्धार किया। द्वापर में नारायणावतार भगवान कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने वेदों का विभाग कर महाभारत तथा पुराणादि की एवं ब्रह्मसूत्रों की संरचना कर एवं शुक, लोमहर्षणादि कथाव्यासों को प्रशिक्षित कर धर्म तथा अध्यात्म को उज्जीवित रखा। कलियुग में भगवत्पाद श्रीमत् शंकराचार्य ने भाष्य, प्रकरण तथा स्तोत्रग्रन्थों की संरचना कर, विधर्मियों-पन्थानुयियों एवं मीमांसकादि से शास्त्रार्थ परकायप्रवेशकर, नारदकुण्ड से अर्चाविग्रह श्रीबदरीनाथ एवं भूगर्भ से अर्चाविग्रह, श्रीजगन्नाथ दारुब्रह्म को प्रकट कर तथा प्रस्थापित कर, सुधन्वा सार्वभौम को राजसिंहासन समर्पित कर एवं चतुराम्नाय – चतुष्पीठों की स्थापना कर अहर्निश अथक परिश्रम के द्वारा धर्म और अध्यात्म को उज्जीवित तथा प्रतिष्ठित किया।

व्यासपीठ के पोषक राजपीठ के परिपालक धर्माचार्यों को श्रीभगवत्पाद ने नीतिशास्त्र, कुलाचार तथा श्रौत-स्मार्त कर्म, उपासना तथा ज्ञानकाण्ड के यथायोग्य प्रचार-प्रसार की भावना से अपने अधिकार क्षेत्र में परिभ्रमण का उपदेश दिया। उन्होंने धर्मराज्य की स्थापना के लिये व्यासपीठ तथा व्यासपीठ में सद्भावपूर्ण सम्वाद के माध्यम से सामंजस्य बनाये रखने की प्रेरणा प्रदान की। ब्रह्मतेज तथा क्षात्रबल के साहचर्य से सर्वसुमंगल कालयोग की सिद्धि को सुनिश्चित मानकर कालगर्भित तथा कालातीतदर्शी आचार्य शंकर ने व्यासपीठ तथा राजपीठ का शोधन कर दोनों में सैद्धान्तिक सामंजस्य साधा।

भारत की विविधता पश्चिमी जगत के लिए तो सदैव से आकर्षण, आश्चर्य एवं शोध की विषयवस्तु रही ही है। अनेक भारतीय विद्वान भी इस सम्बन्ध में भ्रमित हैं। भेदवादी राजनैतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारतवर्ष की राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का अनुभव-आकलन नहीं किया जा सकता। उसके लिए तो बड़ी गहरी, सूक्ष्म, समग्रतावादी, समन्वयकारी एवं सांस्कृतिक दृष्टि चाहिए।

इसे आदि शंकराचार्य ने मात्र ३२ वर्ष की अल्पायु में ही सम्पूर्ण भारतवर्ष का तीन बार पैदल भ्रमण कर सम्यक् रूप से समझा और निरन्तर साधना के बल पर प्रत्यक्ष अनुभव किया था। सम्भवत: यही कारण रहा कि वे राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के स्थायी, मान्य एवं व्यावहारिक सूत्र और सिद्धान्त देने में सफल रहे। पूरब से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक राष्ट्र को एकता एवं अखण्डता के सुदृढ़ सूत्र में पिरोने में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली। सुदूर दक्षिण में जन्म लेकर भी वे सम्पूर्ण भारतवर्ष की रीति, नीति, प्रकृति एवं प्रवृत्ति को भली-भाँति समझ पाए। वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं महाकाव्यों में बताया गया है कि ईश्वर सृष्टि के कण-कण में विद्यमान हैं। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा, परमात्मा एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक-दूसरे से गहरे जुड़े हैं। जड़-चेतन, चर-अचर सभी प्राणियों में एक ही परम तत्त्व को देखने और पाने की दृष्टि भारतवर्ष में सदा से रही है। आद्यशंकराचार्य ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया था। इस ज्ञान, अनुभव एवं साधना के बल पर ही वे समय की धारा में स्वाभाविक रूप से आए और भ्रम, भेद एवं संघर्ष आदि को पहचानकर, उसे दूर करने में सफल हो सके। उन्होंने उस समय प्रचलित विभिन्न मत, पंथ, जाति आदि के बीच समन्वय स्थापित कर अद्वैतवाद का दर्शन दिया। उनका अद्वैत दर्शन सब प्रकार के भेद, संघर्ष, पृथक्ता, विभाजन और दूरी को मिटाकर आत्मा को परमात्मा, जीव को ब्रह्म तथा व्यक्ति-व्यक्ति को प्रकृति और पर्यावरण से जोड़ने का माध्यम है।

उन्होंने मनुष्य को छोटे-छोटे स्वार्थ एवं संकीर्णताओं से

ऊपर उठाया तथा उसकी संवेदना को विस्तार दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य यदि स्वार्थ एवं संकीर्णताओं से ऊपर उठ जाये, तो वह सम्पूर्ण सृष्टि के साथ गहरा आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उनके विचारों ने मनुष्य की चेतना को ऊपर उठाकर उसे उदार एवं श्रेष्ठ बनाने का कार्य किया। उनके अनुसार बाहरी संसार में जो भेद, विभाजन दिखाई देता है, वह अज्ञानता के कारण है। सत्य का साक्षात्कार हो जाने या सच्चा ज्ञान हो जाने पर यह भेद-बुद्धि अपने-आप समाप्त हो जाती है और सारा संसार उसी परम ब्रह्म का अभिव्यक्ति-स्वरूप जान पड़ता है, जिसे आध्यात्मिक भाषा में नाम-रूपात्मक जगत कहते हैं। इसी अर्थ में उनका अद्वैत दर्शन देश, काल, परिस्थिति आदि सब प्रकार की मानव निर्मित सीमाओं से परे एक विश्व-दर्शन है, जिसमें सम्पूर्ण धरती एवं मानवता के कल्याण का भाव निहित है।

आद्य शंकराचार्य जी के समन्वयकारी दर्शन ने उस समय प्रचलित भिन्न-भिन्न वैचारिक एवं धार्मिक धाराओं को भी सनातन धारा में सम्मिलित कर लिया। बौद्ध एवं जैन मतावलम्बियों को भी वे सनातन के साथ लाने में लगभग सफल रहे। उनकी दी हुई दृष्टि ही थी कि बुद्ध भी विष्णु के दसवें अवतार के रूप में घर-घर पूजे गए। उन्होंने ऐसा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक बोध दिया कि दक्षिण के काँची-कालाड़ी-कन्याकुमारी-शृंगेरी आदि में जन्मा हुआ व्यक्ति कम-से-कम एक बार अपने जीवन में उत्तर के काशी-प्रयाग, केदार-बद्रीनाथ की यात्रा करने की इच्छा रखता है, तो वहीं पूरब के जगन्नाथपुरी का वासी पश्चिम के द्वारकाधीश-सोमनाथ की यात्रा कर स्वयं को धन्य समझता है। देश के चार कोनों पर चार मठों एवं धामों की स्थापना कर उन्होंने एक ओर देश को एकता एवं अखण्डता के सबल सूत्रों में पिरोया, तो दूसरी और विघटनकारी शक्तियों एवं प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाया।

अनेक तथाकथित भेदभावों के बीच आज भी गंगोत्री से लाया गया गंगाजल रामेश्वरम् में चढ़ाना पवित्र कर्तव्य समझा जाता है, तो जगन्नाथपुरी में खरीदी गई छड़ी द्वारकाधीश को अर्पित करना परम सौभाग्य माना जाता है। ये चारों मठ एवं धाम न केवल हमारी आस्था एवं श्रद्धा के सर्वोच्च केन्द्र-बिन्दु हैं, अपितु ये आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना के सबसे बड़े संरक्षक एवं संवाहक भी हैं। यहाँ से हमारी चेतना एवं संस्कृति नया जीवन पाती है, बार-बार जाग्रत एवं प्रतिष्ठित होती है।

उन्होंने द्वादश ज्योतिर्लिंगों का जीर्णोद्धार कराया। उन द्वादश ज्योर्तिलिंगों एवं ५२ शक्तिपीठों की तीर्थ यात्रा की आशा-आकांक्षा सभी सनातनियों के मन में सदैव पलती-बढ़ती है। अखण्ड भारत में फैले ये द्वादश ज्योतिर्लिंग एवं शक्तिपीठ हमारी सांस्कृतिक एकता के लोक-स्वीकृत एवं सर्वमान्य प्रतीक हैं। इनके प्रति पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण के लोगों की समान आस्था एवं श्रद्धा है। यह आस्था एवं श्रद्धा हमें आत्मिक तल पर सदैव जोड़े रखती है। यह विविधताओं के मध्य ऐक्य की अनुभूति कराती है। यह देश के भूगोल को जोड़ती है।

उन्होंने हर बारह वर्ष के पश्चात् महाकुम्भ तथा छह वर्ष के अन्तराल पर आयोजित होनेवाले अर्द्धकुम्भ के मेले के अवसर पर भिन्न-भिन्न मतों-पन्थों-मठों के सन्तों-महन्तों, दशनामी संन्यासियों के मध्य विचार-विमर्श, शास्त्रार्थ, संवाद एवं सहमति की व्यवस्था दी। उस मंथन एवं संवाद से निकले अमृत रूपी ज्ञान को जन-जन तक ले जाने की मति, दृष्टि और संस्कृति विकसित की।

यह उन जैसे अवतारी, अलौकिक एवं असाधारण साधकों के प्रयासों का ही सुखद परिणाम है कि हर कुम्भ मेले पर लघु भारत का विराट स्वरूप उमड़ पड़ता है। करोड़ों श्रद्धालुओं का वहाँ एकत्रित होना, पवित्र नदी में डुबकी लगाना, व्रत, उपवास, मर्यादा एवं अनुशासन का नियमपूर्वक पालन करना, तम्बू-डेरा डालकर हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक में कई-कई दिनों तक व्रतियों एवं श्रद्धालुओं का निवास करना, सम्पूर्ण विश्व को मोहित एवं विस्मित कर देता है।

वहाँ भाषा, जाति, प्रान्त एवं पंथ-सम्प्रदाय आदि की सभी बाहरी एवं राजनीति-प्रेरित कृत्रिम दीवारें अपने-आप ढह जाती हैं और पारस्परिक एकता, सद्भाव, सहयोग एवं प्रेम का साक्षात् भाव-दृश्य सजीव एवं साकार हो उठता है। प्रत्येक पीढ़ी के लिये आद्य शंकराचार्य के विचार, दर्शन एवं साहित्य समान रूप से उपयोगी हैं। उन्हें जीने और आत्मसात् करने की आज कहीं अधिक आवश्यकता है। एक ऐसे समय में जबकि विभाजनकारी शक्तियाँ पूरी शक्ति से सक्रिय हों, निश्चय ही आद्यशंकर का जीवन एवं संदेश राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता की भावना के संचार में सहायक है। ○○○

**सन्दर्भ ग्रन्थ – १.** शिवपुराण-रुद्रखण्ड ७.१ **२.** भविष्योत्तरपुराण ३६ **३.** लिंगपुराण ४०, २०-२१, १/२ **४.** कूर्मपूराण १.१२८, ३२-३

भगवान बुद्ध जयन्ती विशेष

# भगवान गौतम बुद्ध


## स्वामी देवभावानन्द

### रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

**जराव्याधि किल्बिषाणां प्रादुर्भूतो भिषग्वरः।**
**नमोऽस्तु बोधिसत्त्वाय सम्बुद्धाय नमो नमः।।**

गौतम बुद्ध एक ऐतिहासिक पुरुष थे। बुद्ध का जन्म ईसा के ५६३ वर्ष पूर्व वैशाख की पूर्णिमा को लुम्बिनी में (वर्तमान में नेपाल में) हुआ था। उनके पिता का नाम शुद्धोधन तथा माता का नाम महामाया था। पिता ने बालक का नाम सिद्धार्थ रखा। उनके जन्म के समय पण्डितों ने कहा था कि अगर वे राज्य करना स्वीकार करेंगे, तो चक्रवर्ती होंगे और अगर परिव्राजक संन्यासी बनेंगे, तो बुद्ध होंगे। स्पष्ट ही है कि कोई व्यक्ति दोनों चक्रवर्ती और संन्यासी नहीं हो सकता। क्योंकि पूर्ण धार्मिकता के लिए संसार-त्याग आवश्यक भूमिका मानी जाती है।

लुम्बिनी, नेपाल

सिद्धार्थ के जन्म के सातवें दिन माता महामाया का निधन हो गया। पर वे मातृस्नेह से वंचित नहीं रहे। उनकी मौसी प्रजापति ने उनका लालन-पालन किया। सिद्धार्थ का कद लम्बा, शरीर सशक्त और सुडौल था। स्वभाव इतना मधुर कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, उन्हें स्नेह करने लगता।

सिद्धार्थ की दयालुता की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। एक दिन वे अपने चाचा के पुत्र देवदत्त के साथ जंगल में टहल रहे थे। देवदत्त के हाथों में धनुष-बाण था। ऊपर उड़ते हुये बगुले को देखकर देवदत्त ने निशाना साधा और बाण चला दिया। दोनों बच्चे पक्षी को पकड़ने दौड़े। सिद्धार्थ पहले पहुँचे। पक्षी मरा नहीं था, केवल घायल हुआ था। सिद्धार्थ ने उसके शरीर से बाण निकाला और किसी पत्ती का रस उसके घाव पर लगाया और पक्षी को शान्त किया।

देवदत्त ने वहाँ पहुँचकर पक्षी को लेना चाहा, पर सिद्धार्थ ने नहीं दिया। उनका कहना था कि यदि पक्षी मर जाता, तो तुम्हारा होता, किन्तु पक्षी केवल घायल हुआ है और मैं उसकी शुश्रूषा कर रहा हूँ, अत: यह मेरा है। बात बढ़ी और न्यायालय में पहुँची। वहाँ न्यायाधीश ने सारी बातें सुनकर निर्णय सुनाया। जीवन उसका होता है, जो उसे बचाने का प्रयत्न करता है। जीवन उसका नहीं होता, जो उसे नाश करना चाहता है। इसलिए यह पक्षी सिद्धार्थ का है।

घोड़ों की दौड़ में जब घौड़े दौड़ते और उनके मुँह से झाग निकलने लगता, तो सिद्धार्थ उन्हें थका जानकर वहीं रोक देता और जीती हुई बाजी हार जाता। खेल में भी सिद्धार्थ को हार जाना पसन्द था। क्योंकि किसी को हराना और किसी का दुखी होना, उससे नहीं देखा जाता था।

गौतम के पिता ने दुखद अनुभवों से उन्हें बचाने के लिए पूरी सावधानी बरती थी और संयोग अथवा ईश्वरेच्छा ने उनके पथ में एक दुर्बल, जरा-जर्जर वृद्ध, एक रोगी और एक मृत मनुष्य को ला दिया। उन अनुभवों ने उन्हें धार्मिक जीवन द्वारा शान्ति और गम्भीरता प्राप्त करने की प्रेरणा दी। वे उन पर विचार करने लगे कि बुढ़ापे का दुख, बीमारी का कष्ट, फिर मृत्यु का दुख, यही मनुष्य का प्राप्य है और यही उसकी नित्य गति है। क्या इस दुख से बचने का उपाय नहीं है?

चौथा दृश्य उन्होंने युवा संन्यासी का देखा, जो सादगी से रहता है। मन, वचन, कर्म से पवित्र रहने का प्रयास करते हुये तपस्या द्वारा संसार के कष्ट से मुक्ति पाने का प्रयत्न कर रहा है। लोगों को पवित्र जीवन और आनन्द की प्राप्ति का मार्ग बताता है। मनुष्य की इन चार अवस्थाओं को देखकर सिद्धार्थ ने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया और अपने पाँच साथियों को लेकर वे मुक्ति के मार्ग पर उरुवेला नामक

स्थान (जो बिहार में बोध गया के पास है) पर पहुँचे। इस सुन्दर स्थल में गौतम ने अपने आपको उग्र तपस्या में रत कर दिया। उन्होंने सोचा कि जिस प्रकार घर्षण से गीली लकड़ी में आग पैदा होना सम्भव नहीं है, किन्तु सुखी लकड़ी में यह सम्भव है। उसी प्रकार वासना-विकारहीनता के बिना प्रकाश-प्राप्ति सम्भव नहीं है। वे ध्यान-मग्न रहे और ध्यान की चार स्थितियाँ पार करके उन्होंने उसकी चरम सीमा, आत्मनियन्त्रण और स्थिरता प्राप्त की। उन्होंने समस्त विश्व को एक नियमित व्यवस्था के रूप में देखा, जहाँ सचेष्ट प्राणी सुखी और दुखी होते हैं और उच्च और निम्न अस्तित्व में एक रूप से निकलकर अन्य रूप ग्रहण करते हैं। अनेक

बौद्ध गया, बिहार

प्रकार से कठोर साधना के पश्चात् उन्होंने सम्बोधि की प्राप्ति की। ३५ वर्ष की आयु में वे गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्होंने पैंतालिस वर्ष तक विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और उनके अनेक लोग अनुयायी हो गये। आज के युग में वे बुद्धिवादी के रूप में स्वीकृत होते हैं। जब हम उनके प्रवचन पढ़ते हैं, तो उनकी तार्किकता से प्रभावित होते हैं। उनके नैतिक पाठ का प्रथम चरण सद्विचार और बौद्धिक दृष्टिकोण था। वे मानव जाति के आत्म-दर्शन और भाग्य विधान में बाधक भ्रमजाल को दूर करने में सचेष्ट हुए। स्वामी विवेकानन्द कहते थे, ''बुद्ध ही एक व्यक्ति थे, जो पूर्णतया तथा यथार्थ में निष्काम कहे जा सकते हैं।'' अपने सम्बन्ध में भगवान बुद्ध कहा करते थे, बुद्ध शब्द का अर्थ है – आकाश के सामान अनन्त ज्ञानसम्पन्न, मुझ गौतम को यह अवस्था प्राप्त हो गयी है, तुम भी यदि प्राणपण से प्रयत्न करो, तो उस स्थिति को प्राप्त कर सकते हो।

जगत में वे ही एक मात्र ऐसे हैं, जो यज्ञों में पशुबलि निवारण हेतु किसी प्राणी के जीवन की रक्षा के लिए अपना जीवन भी न्यौछावर करने को तत्पर थे।

एक बार उन्होंने एक राजा से कहा, 'यदि किसी निरीह पशु के होम करने से तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, तो मनुष्य के हवन से किसी उच्च फल की प्राप्ति होगी। राजन, उस पशु के पाश काटकर मेरी आहुति दे दो। शायद तुम्हारा अधिक कल्याण हो सके। राजा स्तब्ध हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध पूर्ण रूप से निष्काम थे। वे कर्मयोग के ज्वलन्त आदर्शस्वरूप थे और जिस उच्चावस्था पर वे पहुँच गये थे, उससे प्रतीत होता है कि कर्मशक्ति द्वारा हम भी उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि बुद्ध रोष से लाल हो गये हों या कभी उनके मुख से कठोर वचन निकले हों। उन्होंने संसार को दुष्ट नहीं, अज्ञानी समझा।

बुद्ध के 'मौन' का अर्थ जानने के लिए पहले हमें उनका प्रयोजन समझ लेना चाहिए। बुद्ध की शिक्षा की कुंजी उनकी नैतिक श्रेष्ठता है, उनके जीवन और जगत् सम्बन्धी विचारों का उद्गम उनका अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टिकोण है। प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व में कोई कारण है। यदि कारण न रहे, तो कार्य न होगा। यदि दुख के कारण का नाश हो जाये, तो दुख का नाश हो जाएगा। उनके चारों ओर यज्ञ, धर्म और पंथों द्वारा योजित कर्मकाण्ड व्याप्त था, जो तत्त्वज्ञान नैतिकता और व्यक्ति के चरित्र-निर्माण को कम महत्त्व देता है, बुद्ध उसका विरोध करते हैं। किन्तु नैतिक शिक्षा परिवर्तन की सम्भावना स्वीकार करती है। मनुष्य देव नहीं है, उसे देव बनाना है। उसकी दैवी स्थिति का निर्माण सद्विचार और सत्कर्म द्वारा होगा। वह प्रत्यक्ष, जीवित और सचेष्ट प्राणी है। उसे यह कहना कि कोई अतीन्द्रिय चेतना है, जहाँ संशय, बन्धन शाश्वत द्वारा पराजित हो जाते हैं, व्यर्थ है। अतीन्द्रिय आत्मा को नहीं, प्रत्यक्ष मानव को नैतिकता प्राप्त करनी है। इसे चेष्टा और अनुशासन से आत्म-निर्माण करना है। आत्मा वृद्धिशील, विकासशील है, जिसे कष्ट और श्रम से प्राप्त किया जा सकता है। यह कोई दान नहीं है कि निष्क्रिय भाव से स्वीकार कर उसे उपयोग कर लिया जाए।

'अहं' का अर्थ है हमें दग्ध करनेवाली भावनाएँ, हमारे विचारों पर कब्जा कर लेनेवाले वासना-विकार और हमारे द्वारा किए गए निर्णय। इन्हीं वस्तुओं से जीवन नाटकीय हो

जाता है। इनमें निरपेक्ष शाश्वत कुछ नहीं है। तभी तो हम जो हैं, उससे भिन्न हो सकते हैं। व्यक्ति का यथार्थ व्यक्तित्व उसकी सर्जनात्मक संकल्प-शक्ति है। जब हम भावना का कोलाहल शान्त कर देते हैं, वस्तु जगत का प्रभाव हमारे लिए थम जाता है, शारीरिक क्षुधा शान्त हो जाती है, तब हमें अपने भीतर आत्मा की शक्ति का अनुभव होता है। साथ ही आत्मा का भ्रम मनुष्य को स्वार्थ की ओर प्रवृत्त और दूसरों की हानि के लिये प्रस्तुत करता है। अहं का तीव्र भाव ही संसार के दुखों का मूल है।

अहंकारी व्यक्ति दृष्टिहीन जीव के समान है, जो दूसरों के लिये अंधा रहता है। हम यदि मन-शरीर की आसक्ति से निवृत्त हो जाएँ, यदि सांसारिक ज्ञान के मापदण्डों से मुक्त स्थिति में पहुँच जाएँ, तो हमारा विकास होने लगे।

अहं से निर्लिप्त का अर्थ है समस्त सजीव जगत के प्रति सौम्य, गम्भीर सहृदयता का भाव। अपने चारों ओर के जीवन से बुद्ध ने जान लिया कि मनुष्य, जीवन में सत् का विकास करनेवाली अपनी शक्तियों का तब तक उपयोग नहीं करता, जब तक वह अपने से भिन्न किसी बाह्य शक्ति पर निर्भर रहता है। वह अपना स्वभाव सहसा उदात्त कर देने के लिए दैवी चमत्कार की आशा करता है। बाह्य शक्ति पर आश्रित होने का अर्थ होता है मानवी प्रयास का त्याग।

वर्तमान स्थिति के प्रसंग में धर्म का उद्देश्य आदर्श है। धर्म समस्त आदर्श लक्ष्यों का एकीकरण है, जो हमें संकल्प और कर्त्तव्य की ओर प्रवृत्त करता है। धर्म हमारा नियंत्रण इसलिए नहीं करता कि वह हमसे भिन्न कोई अस्तित्व है, अपितु अपने आन्तरिक अर्थ और महत्त्व के कारण धर्म की सत्ता है, क्योंकि हमारे कर्मों में उसकी सत्ता प्रकट होती है। बुद्ध का आग्रह है कि अस्तित्व में धर्म का मूल है। किन्तु धर्म को किसी बाह्य व्यक्तित्व के साथ सम्बन्धित करने के वे विरोधी हैं। अपनी प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य असत् रहता है और उसका पुनर्जन्म, पुनर्निर्माण ईश्वर की कृपा से होता है। तब मानव-चरित्र का विकास मानव-चेष्टा का स्वाभाविक परिणाम नहीं माना जायेगा, अपितु अलौकिक शक्ति की मदद से अचानक और सम्पूर्ण क्रान्ति समझा जायेगा। बुद्ध के अनुसार धर्म, न्याय और दया की प्रवृत्ति वस्तुजगत में सक्रिय है। धर्म अस्तित्व से अभिन्न तत्त्व है और कर्ममय धर्म विश्व-निर्माता होता है। बुद्ध के उपदेशों में कहीं गम्भीर वैयक्तिक प्रेम-निष्ठा, तीव्र प्रेम भावना आत्मा का सांसारिक प्रेम जैसा कथोपकथन नहीं मिलता, अपितु धर्म का सार, असत् का दर्शन, जो भिन्न होते हुए वस्तु जगत की चंचलता के निकट है, स्वात्मा से परे और महान विश्व में सम्पूर्ण क्रियाशील किसी शक्ति के प्रति सहज निष्ठा हमें मिलती है।

'संसार को बुद्ध का सन्देश' नामक लेख में स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं, ''बुद्ध ने परम दुर्धर्ष सत्यों का उपदेश किया। उन्होंने वेदों के दर्शन के सारांश की शिक्षा, बिना भेदभाव किये हर किसी को दी। उन्होंने उसका उपदेश सारे संसार के लिए दिया, क्योंकि मानव की समता उनके महान सन्देशों में से एक है। सभी मनुष्य समान हैं। वहाँ किसी के साथ कोई छूट नहीं। बुद्ध समता के महान उपदेष्टा थे।

''हर स्त्री-पुरुष को आध्यात्मिकता प्राप्त करने का समान अधिकार है, यह उनकी शिक्षा थी। उन्होंने पुरोहितों तथा अन्य जातियों के मध्य अन्तर को समाप्त किया। निम्नतम लोग भी उच्चतम उपलब्धियों के अधिकारी हैं। उन्होंने निर्वाण का द्वार प्रत्येक व्यक्ति के लिए खोल दिया।''

एक अन्य दार्शनिक के मतानुसार भगवान बुद्ध का धर्म-सिद्धान्त यह था – हमारे जीवन में दुख क्यों है? क्योंकि हम स्वार्थी हैं। हम अपने लिए वस्तुओं की कामना करते हैं, इसलिये दुखी हैं। इससे मुक्ति पाने का मार्ग क्या है? आत्मा का परित्याग करना। आत्मा की सत्ता नहीं है। प्रपंचात्मक जगत ही, यह सब ही, जिसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं, वह सब है, जिसकी सत्ता है। जन्म-मरण-चक्र के पीछे विद्यमान आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है। है केवल विज्ञान प्रवाह – एक विज्ञान दूसरे विज्ञान का उत्तरोत्तर अनुगमन करता रहता है। प्रत्येक विज्ञान एक ही क्षण में अस्तित्व प्राप्त करता है और अस्तित्वहीन हो जाता है। बस, केवल इतना ही, विज्ञान का कोई विज्ञाता नहीं है, आत्मा नहीं है। शरीर सर्वदा परिवर्तित होता रहता है। इसी प्रकार मन, चेतना भी। इसके लिए बौद्ध मतानुयायी प्राय: दीपशिखा की उपमा देते हैं। जब तक दीपक जलता है, तब तक उसकी लौ की एक ही शिखा प्रतीत होती है, जबकि यह शिखा अनेकों शिखाओं की एक शृंखला है। एक बूँद से उत्पन्न शिखा, दूसरी बूँद से उत्पन्न शिखा से भिन्न है, किन्तु शिखाओं के निरन्तर प्रवाह से एकता का भान होता है। इसी प्रकार सांसारिक पदार्थ क्षणिक हैं, किन्तु उनमें एकता प्रतीत होती

है। अतएव आत्मा एक भ्रम है। सारी स्वार्थपरता इस आत्मा को, इस भ्रान्तिजन्य आत्मा को पकड़े रहने से ही होती है।

यही था वह तत्त्व, जिसका उपदेश बुद्ध ने दिया। उन्होंने केवल बातें नहीं की। वे संसार के लिए स्वयं अपना जीवन तक देने को तत्पर थे।

बुद्ध ने कहा है, सारे अनुष्ठान मिथ्या हैं, जगत में केवल एक ही आदर्श है। सारे मोह को ध्वस्त कर दो, जो सतत है वही बचा रहेगा। बादल जैसे ही हटेंगे, सूर्य चमक उठेगा। पूर्णरूपेण स्वार्थरहित हो जाओ, एक चीटीं तक के लिए अपना जीवन देने को प्रस्तुत रहो।

बुद्ध के जीवन में एक आकर्षण है। उनमें साहस, निर्भीकता और विराट प्रेम है। उनका जन्म मनुष्य के कल्याण के लिए हुआ था। अपने लिये लोग ईश्वर की खोज, सत्य की खोज कर सकते हैं, किन्तु उन्होंने स्वयं के लिये सत्य का ज्ञान प्राप्त करने की चिन्ता भी नहीं की। सत्य की खोज उन्होंने इसलिये की कि लोग दुख से पीड़ित थे। उनकी सहायता कैसे की जाए, यही उनकी एकमात्र चिन्ता थी। उन्होंने आजीवन अपने लिए विचार तक नहीं किया। उनके अद्‌भुत मस्तिष्क में कहीं भावुकता का नाम नहीं।

एक विराट मस्तिष्क कभी भी अन्धविश्वासी नहीं हुआ। विश्वास इसलिए न करने लगो कि एक पुरानी पाण्डुलिपि प्रस्तुत कर दी गयी है, वरन तुम अपने लिए स्वयं ही सोचो, अपने लिए सत्य की खोज करो और स्वयं ही उसकी अनुभूति प्राप्त करो। बल-बुद्धि से दुर्बल, भीरु व्यक्ति सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

व्यक्ति को मुक्त और आकाश सदृश विस्तीर्ण होना पड़ता है। व्यक्ति का मन स्फटिकवत् निर्मल होना चाहिए। केवल तभी सत्य उसमें प्रकाशित हो सकता है।

अधिक सार्थक और उचित होगा कि हम बुद्ध के उपदेशों को उनके युग की परिस्थिति के प्रसंग में समझें और प्रश्न करें कि बुद्ध के विश्वासानुसार दृश्य-नाम-रूप संसार के और परे कोई सत्य है या नहीं, जीवात्मा के परे कोई आत्म-तत्त्व है या नहीं और अमर जीवन की भाव रूप कल्पना उन्हें थी या नहीं। इससे हमें यह जानने में सहायता मिलेगी कि बुद्ध नास्तिक हैं अथवा किसी चरम आध्यात्मिक सत्य में उनका विश्वास है।

अपने विचारों का प्रचार लगातार पैंतालिस वर्षों तक उन्होंने किया। बुद्ध के जीवन की यह भी एक विशेषता है कि जिस दिन (याने वैशाखी पूर्णिमा के दिन) उन्होंने जन्म ग्रहण किया था। उसी दिन उनको सम्बोधि की प्राप्ति हुई थी और इसी दिन उनका महानिर्वाण हुआ था। यह उपलब्धि ही मनुष्य की चरम निष्पत्ति है। ○○○

**शिष्य ने कहा – हे प्रभु! मुझे मनन का उपदेश दीजिए, ताकि मैं स्वयं को उसमें लगा सकूँ और मेरा मन पवित्र भूमि के स्वर्गलोक में प्रविष्ट हो सके।**

**भगवान बुद्ध ने कहा – पाँच प्रकार के मनन होते हैं।**

**१. पहला मनन प्रेम का मनन है, जिसके अन्तर्गत तुम्हें अपने हृदय को इस प्रकार समायोजित कर लेना चाहिए कि तुम समस्त प्राणियों की समृद्धि और कल्याण की कामना करो और जिसमें तुम्हारे शत्रुओं के लिए सुख की कामना भी सामहित हो।**

**२. दूसरा मनन करुणा का मनन है, जिसमें तुम समस्त उत्पादित प्राणियों की पीड़ाओं का विचार उनके दुखों और चिन्ताओं की स्पष्ट कल्पना के साथ इस प्रकार करते रहो कि तुम्हारी आत्मा में उनके लिए गहन करुणा का संचार हो जाए।**

**३. तीसरा मनन आनन्द का मनन है, जिसमें तुम दूसरों की समृद्धि की आकांक्षा करते हो और उनको आनन्दित देखकर आनन्दित होते हो।**

**४. चौथा मनन अपवित्रता का मनन है, जिसमें तुम व्यभिचार के दुष्परिणामों पर तथा पाप और रोगों के प्रभावों पर विचार करते हो। प्रायः क्षणिक सुख भी कितना क्षुद्र होता है तथा इसका परिणाम भी कैसा मर्मान्तक होता है।**

**५. पाँचवा मनन प्रशान्ति का मनन है, जिसमें तुम प्रेम और घृणा, आतंक और उत्पीड़न, धन और दरिद्रता से ऊपर उठ जाते हो और स्वयं अपने भाग्य पर तटस्थ प्रशान्ति और पूर्ण धैर्य से विचार करते हो।**

**– भगवान बुद्ध**

# रामगीता (६/१)

## पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्‌घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

**एक बार प्रभु सुख आसीना।**
**लछिमन बचन कहे छलहीना।।**
**सुर नर मुनि सचराचर साईं।**
**मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।।**
**मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।**
**सब तजि करौं चरन रज सेवा।।**
**कहहु ग्यान बिराग अरु माया।**
**कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।। ३/१३/५**
**ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।**
**जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।। ३/१४/०**

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज और अन्य समुपस्थित सभी संन्यासी महात्माओं, ब्रह्मचारियों के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम और नमन है। आप सब लोग इस पावन प्रांगण में श्रीरामचरितमानस के माध्यम से जीवन के जिन सत्यों का उद्‌घाटन किया गया, उसे श्रवण करने के लिए एकत्र हुए हैं। वह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र, जो कभी-कभी व्यक्ति के लिए कठिन-सा प्रतीत होता है। श्रद्धेय स्वामीजी तो मेरे कार्य को अत्यन्त सरल बना देते हैं। उनका बीच में होना बाधक न होकर सभी श्रोताओं के लिये ही नहीं, मेरे लिए भी बड़ा साधक सिद्ध होता है। श्रीरामचरितमानस की यह विशेषता है कि आप उनको जिस दृष्टि से पढ़ना चाहें, सुनना चाहें, समझना चाहें, आपको आनन्द की अनुभूति हो सकती है।

गोस्वामीजी ने बड़ा कवित्वपूर्ण संकेत प्रस्तुत किया है। उनका संकेत इस ओर है कि यह रामचरितमानस एक सरोवर है। सरोवर में कमल की कल्पना होती है। जहाँ सरोवर होगा, वहाँ कमल होगा। उन्होंने कहा कि इस मानसरोवर में भी कमल है। कैलाश के मानसरोवर में भले ही कमल न हो, पर इस मानसरोवर में कमल है। फिर उन्होंने एक सूक्ष्म-सा संकेत दे दिया कि कमल का एक सौरभ है, उसकी एक भीनी-भीनी-सी सुगन्ध है। उसका अनुभव व्यक्ति थोड़ी दूर से भी कर सकता है। पर अगर वह कमल के अधिक पास पहुँच जाये और खिले हुए कमल के अन्तराल में उसका जो केन्द्र है, उस पर ध्यान दे, तो उसे एक पीले रंग का धूल, जिसे पराग की संज्ञा दी गयी है, उस पराग का दर्शन होगा। उसके साथ-साथ जब भ्रमरों पर दृष्टि जाती है, तो यह सहज जिज्ञासा होती है कि यह भ्रमर किसलिए आया हुआ है? तब यह कहा जाता है कि भ्रमर कमल के रस का पान करता है और इस रस को साहित्यिक भाषा में मकरन्द की संज्ञा दी गई है। सुवास, पराग और मकरन्द; रामचरितमानस में भी ये तीनों बातें विद्यमान हैं। उन्होंने कहा कि इसमें जो भाषा है, वही इसका सुगन्ध है। यदि आपने मानस की चौपाई पढ़ी हो, तो देखेंगे, यद्यपि पढ़ने पर भी ध्यान नहीं जाता है। वे कहते हैं –

**अरथ अनूप सुभाव सुभाषा।**
**सोइ पराग मकरंद सुबासा।। १/३६/६**

इसकी भाषा ही मानो इसका सुगन्ध है, इसका सौरभ है। प्रेम से आप मानस की पंक्तियों का पाठ करते हैं, स्वर के साथ आपको भाषा के आनन्द की अनुभूति होती है। यह मानो पहला दूरदर्शन है और उसके पश्चात् दूरदर्शन तक ही नहीं रुक जाना चाहिए।

अभी कुछ समय पहले एक बड़े नगर में कथा थी, वहाँ

प्रबन्ध किया गया कि लोगों को दूरदर्शन के माध्यम से कथा सुनाई जाये, ताकि पूरे नगर में लोग कथा सुन सकें। उसमें कुछ ऐसे श्रोता थे, जो प्रतिवर्ष आते थे, किन्तु इस बार नहीं दीख रहे थे। बातचीत में विनोद भरी वार्ता हुई। पूछा, क्या बात है, दिखाई नहीं देते, क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है? क्या कोई कठिनाई थी? बोले नहीं, नहीं, मैं तो दूरदर्शन से नित्य कथा सुन रहा था। मैंने कहा कि दूरदर्शन से भले ही आपने सुन लिया हो, पर जब तक निकट दर्शन नहीं करेंगे, तब तक आपका दर्शन अधूरा रहेगा।

वस्तुत: मानस का दूरदर्शन यही है। आप एक संगीतमय स्वर लहरी का आनन्द ले लें, भाषा का आनन्द ले लें, वह भी एक आनन्द है, पर वह तो दूर का है। अगर आप कमल के पास जाएँगे, तो उसमें आपको पराग का दर्शन होगा और उसकी सुगन्ध का अनुभव होगा। गोस्वामीजी कहते हैं कि उसमें भाषा का जो अर्थ है, वही पराग है। यदि आप अर्थ नहीं जानते हैं, तो आपको आनन्द तो आ रहा है, पर वह अधूरा आनन्द है। जब आप उस भाषा के अर्थ को जान लेते हैं, तो और अधिक आनन्द की अनुभूति होती है। पर उसके बाद भी जो मकरन्द है, वह अन्तिम वस्तु है। सबसे अधिक रहस्यमय मकरन्द है। उस मकरन्द का पान व्यक्ति नहीं कर पाता। वह तो केवल भ्रमर ही है, जो उस मकरन्द-रस का पान करता है। इसके लिये कहते हैं कि उस अर्थ के अन्तराल में जो भाव है, वही मानो उसका मकरन्द है। मानस के गायन से संगीत का आनन्द, उसके अर्थ का आनन्द और अर्थ के आनन्द के बाद भी उसमें एक रहस्यमय मकरन्द है। उसके लिए गोस्वामीजी एक संकेत देते हैं।

श्रीराम-सीता का विवाह सम्पन्न हुआ और लोक रीति के अनुकूल वर-कन्या को कोहबर में ले जाया गया। आप नित्य विवाह प्रसंगों में देखते होंगे कि दूल्हे को जब कोहबर में ले जाया जाता है, तो वहाँ पर कोई पुरुष नहीं होता। पुरुष सब मण्डप में ही रहते हैं और कोहबर में केवल महिलायें, देवियाँ रहती हैं। आनन्द लेने का, व्यंग्य-विनोद का एक पारम्परिक प्रयोग आप हर विवाह में देखते होंगे। राम-सीता का विवाह हुआ, तो वहाँ भी उन्हें कोहबर में ले जाया गया और उसमें गोस्वामीजी ने शब्द लिखा –

**कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।**
**अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै।।**
**लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।**
**रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं।।**
**निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।**
**चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी।।**
**१/३२६/छ.**

उसके अन्त में जो पंक्ति देते हैं, बड़ा विनोदमय वातावरण है। वर और कन्या उस समय उत्तर देते हैं। यहाँ पर गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीराम और श्रीसीताजी; दोनों ही बड़े संकोची हैं। तो क्या उत्तर दें, इसे सिखाने के लिए दो देवियाँ सामने आईं। गोस्वामीजी कहते हैं –

**लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।**

शारदाजी को यह कार्य सौंपा गया कि वे सीताजी को सिखावें कि उन्हें क्या उत्तर देना है और दूसरी ओर पार्वतीजी को यह भार दिया गया कि वे राम को बताएँगी। यह एक विशेष बात है कि संसार में तो बहुधा व्यक्ति जीत में ही आनन्द लेता है, पर प्रीति का प्रसंग विजय का नहीं होता, वहाँ तो योजनापूर्वक वर को परास्त कर देना है। यह चेष्टा देवियों के द्वारा होती है। उन्होंने योजनाबद्ध ढंग से पहले से ही श्रीराम को हराने की योजना बना ली थी। क्योंकि दोनों को सिखाने के लिए जिनका चुनाव किया गया था, वे हैं एक सरस्वती और दूसरी ओर पार्वती। बोलने की कला में सरस्वती जितनी निपुण हैं, उतनी निपुण पार्वती हो नहीं सकतीं। उनकी भूमिका ही नहीं है। सरस्वतीजी जब श्रीसीताजी की ओर बतायेगीं कि उन्हें क्या बोलना है, तो वह पक्ष विजयी होगा। किसी ने पूछा कि यह तो हम हर विवाह में देखा ही करते हैं। श्रीराम-सीता के विवाह में इसका क्या तात्पर्य है? अन्त में गोस्वामीजी ने वह सूत्र दिया। जैसे विवाह में यह दृश्य देखकर महिलायें प्रसन्न होती हैं और दूल्हें भी उसका आनन्द लेते हैं और इसे पढ़कर जो इसका आनन्द लेना चाहें, ले सकते हैं। पर उसके बाद गोस्वामीजी जो शब्द लिखते हैं, वह बड़ा रहस्यमय है। वह शब्द है कौतुक। मानो जहाँ परस्पर एक-दूसरे के प्रति एक कौतुक का दृश्य उपस्थित हो गया कि जहाँ पर परस्पर वे वही बोल रहे हैं, जो उन्हें बताया जा रहा है। उस कौतुक का आनन्द आया। पर उसके बाद गोस्वामीजी कहते हैं, विनोद। तो कौतुक का उद्देश्य ही विनोद होता है। अब यह

विनोद के बाद इसमें दो शब्द और हैं और ये शब्द ही उस प्रसंग के प्राण हैं। अगर आप उसका आनन्द लेना चाहें, अनेक प्रसंगों में मिथिलावासियों ने अनेक गीत बनाये हैं। आप लोगों ने बहुधा लीला-प्रसंगों में उन्हें पढ़े-सुने होंगे। बड़े रसीले होते हैं, व्यंग्य-विनोद होता है, सुनकर गाली का भी एक आनन्द श्रोता अनुभव करते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि हाँ, संसार में विनोद-कौतुक तो होता है, पर विनोद के बाद फिर कभी-कभी एक विग्रह भी उत्पन्न हो जाता है। व्यंग्य-विनोद में कोई ऐसी बात कह दी गई, जो अत्यन्त कड़वी लगी, तब सारा वातावरण क्षोभ में बदल जाता है। कई लोग हैं, जो विनोद का आनन्द भी नहीं लेते, विनोद ही तो अन्तिम लक्ष्य नहीं है। विनोद का आनन्द तो प्रत्येक विवाह में पा सकते हैं। पर इस विवाह की विशेषता है कि विनोद के बाद, यह जो प्रमोद है, वह अत्यधिक महत्त्व का है। यह प्रमोद जिसको कहते हैं वह विलक्षण है। ऐसा मोद, ऐसी स्थिति, जिसे बार-बार अनेक सन्दर्भों में किया गया, योग के सन्दर्भ में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया। इसका अभिप्राय है कि क्षणिक विनोद और क्षणिक कौतुक केवल आता है और चला जाता है, पर उसका वह आनन्द ऐसा सुस्थिर हो जाय, जिसको हम मोद न कहकर प्रमोद कहें। उस प्रमोद की वृत्ति का अभिप्राय है, जिस आनन्द का, जिस मोद का, जिस रस का केवल क्षणिक रूप में उसका अनुभव न हो, उसको एक स्थाई रूप में ग्रहण कर सकें, तो प्रमोद की स्थिति आ गई। इसके बाद चौथा शब्द गोस्वामीजी कहते हैं कि कौतुक, विनोद और प्रमोद के भी बाद, भगवान के प्रति जो प्रेम की पराकाष्ठा है, वह प्रेम की पराकाष्ठा भी इस मण्डप के शब्दों, अर्थों और उसके अन्तरंग भावपक्ष पर ध्यान देने पर ही व्यक्ति उसका लाभ पा सकता है। वह अन्तरंग भावपक्ष क्या है? वह अन्तरंग मानो वही मकरन्द है। सामने वाले ने पूछा कि इसका आनन्द किसको मिलता है? तो गोस्वामीजी ने एक ऐसा शब्द का प्रयोग किया, जो दो अर्थों को प्रतिपादित करनेवाला वह शब्द है। सखियों के लिए भी अलग शब्द का प्रयोग किया जाता है और भौंरे जो हैं, उनके लिए भी अलग शब्द का प्रयोग करते हैं। तो गोस्वामीजी ने संकेत किया – कौतुक, विनोद, प्रेम। प्रेम की भी पराकाष्ठा है कि भगवत्प्रेम का उदय जीवन में हो। वहाँ तक कौन पहुँचाता है – **कौतुक बिनोद प्रेम न जाइ कही।** यह शब्दों का विषय नहीं है। शब्द और अर्थ वाणी के द्वारा बताया जा सकता है। पर वह अन्तरिम स्थिति कौन हैं? तो बोले '**जानहि अलि**' केवल वहाँ की सखियाँ जानती हैं। पुरुष नहीं हैं, केवल सखियाँ हैं, तो सखियाँ जानती हैं। कमल के सन्दर्भ में उन रसिक भक्तों में जिनके अन्त:करण में रसास्वादन की वह दिव्य वृत्ति आ गई है, वे उस अन्तरंग रस को पीकर धन्य होते हैं। तो इस मानस के सारे प्रसंगों का – भाषा का, अर्थ का और उसका जो अन्तरंग तात्पर्य-भाव है, उन तीनों रूपों में आनन्द ले सकते हैं।

अब एक प्रसंग, जिसकी चर्चा कल दूसरे रूप में की गई थी, थोड़ा और उसको स्पष्ट करके देखते हैं। एक दार्शनिक सिद्धान्त को, एक तात्त्विक विचार को गोस्वामीजी ने ऐसे अनोखे रूप में प्रस्तुत किया, जिसका वास्तविक भाव अधिकांश व्यक्ति ग्रहण नहीं कर पाते, पर उन्हें बहुत आनन्द आता है। उसके सन्दर्भ में, जिस प्रश्न का उस प्रसंग के द्वारा उत्तर दिया गया है, वह क्या है? मैं आशा करता हूँ कि आप पूरी तरह से एकाग्र मन, बुद्धि, चित्त से उसे सुनेंगे।

अगुण और सगुण, ये दो शब्द आप ब्रह्म के, ईश्वर के सम्बन्ध में सुनते हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि ब्रह्म अगुण है, निराकार है और कुछ लोगों की मान्यता है कि ब्रह्म सगुण-साकार है। एक पक्ष वह है कि ईश्वर सगुण होगा, तो गुण के साथ बन्धन होंगे। गुण के द्वारा जो-जो स्थितियाँ व्यक्ति के जीवन में दिखाई देती हैं, वे सगुण ईश्वर में भी दिखाई देगीं। इसलिए ईश्वर सगुण नहीं, निर्गुण ही होगा। दूसरी ओर सगुण-साकारवादी यह कहते हैं कि इतना बड़ा विश्व साकार है, सब वस्तुएँ दिखाई दे रही हैं, तो उसका निर्माण तो साकार ही कर सकता है। निराकार कैसे बनावेगा? निर्माता जब निर्माण करेगा, तो निर्माता के हाथ होंगे। उन्होंने कहा – नहीं, ईश्वर जो है वह सगुण-साकार है। **(क्रमशः)**

**ईश्वर ने वास्तव में कोई अभाव नहीं रखा है, मनुष्य का अभाव केवल उसके मन में है। सुख-दुख मन में हैं, बाहर नहीं। जैसा भाव, वैसा लाभ।**

**स्वाधीनता है परम सुख; पराधीनता महादुख। ईश्वर का दासत्व यथार्थ स्वाधीनता है। बिना षड्रिपुओं के परित्याग किये ईश्वर का दास होना सम्भव नहीं।**

**– स्वामी विरजानन्द जी महाराज**

# महारानी अहिल्या बाई

**श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर**

बच्चो, भारत का इतिहास अनेकों रानियों-महारानियों के जीवन की अद्‌भुत गाथा गाता है। तो आज हम रानी अहिल्या बाई के बारे में जानते हैं। अहिल्या बाई का जन्म १७२५ में जामखेड़ा में चौनड़ी नामक गाँव में हुआ था, जो आज के महाराष्ट्र के बीड़ जिले में स्थित है। उनके पिता मान्कोजी राव शिंदे गाँव के पाटिल यानी मुखिया थे। उस समय लड़कियों को पढ़ाने का प्रचलन नहीं था, लेकिन उनके पिता ने अहिल्या को घर पर ही पढ़ना-लिखना सिखाया।

यह कहानी सन् १७३३ की है। एक दिन मल्हाराव होल्कर नामक राजा भारतवर्ष की यात्रा कर वापस आ रहे थे। वे यात्रा से थक गये थे। इसलिये वे जौंदी नामक गाँव के एक मन्दिर में विश्राम करने लगे। इस मन्दिर में मल्हाराव की दृष्टि एक सुन्दर और सुशील कन्या पर पड़ी, जो मात्र ८ वर्ष की थी। वह मन्दिर में सन्ध्या आरती गा रही थी। उसके मधुर स्वर और चेहरे का तेज देखकर मल्हाराव प्रभावित हुए और उसे अपनी बहू बनाने का निश्चय किया। इसी प्रकार अहिल्या बाई एक साधारण लड़की से होल्कर राज्य की राजरानी बन जाती है। शिक्षित होने के कारण धर्म-ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा और बड़ों की सेवा का संस्कार था। अपने मधुर व्यवहार के कारण उन्होंने ससुराल के लोगों का मन जीत लिया। सास की देखरेख में घर-परिवार की और ससुर के प्रोत्साहन से राज-काज की सारी जिम्मेदारी संभाली। इसी बीच उन्हें एक पुत्र मालेराव और एक पुत्री मुक्ताबाई हुई। सन् १७५४ में भरतपुर के महाराजा सूरजमल जाट के विरुद्ध खूमेर के युद्ध में पति (खाण्डे राव) वीरगति को प्राप्त हो गये। कुछ समय के बाद ससुर मल्हाराव और एकलौते पुत्र मालेराव की भी मृत्यु हो जाती है। पति, ससुर और पुत्र की मृत्यु के बाद होल्कर राज्य का सारा दायित्व अहिल्या पर आ गया। ऐसी स्थिति में राघोबा ने होल्कर राज्य पर आक्रमण करने की सोची। वहाँ इन्दौर में अहिल्या बाई के एक विशेष गुप्तचर ने इस आक्रमण की सूचना अहिल्या बाई को दी। इस स्थिति में अहिल्या बाई ने टुकोजी से मिलने का मन बनाया।

उन्होंने टुकोजी को सेना तैयार करने को कहा। उन्होंने पूने के माधव राव पेशवा को संदेश भिजवाया और राघोबा के कार्यों के बारे में बताया। माधव राव ने उन्हें उत्तर दिया कि हम राघोबा के इस कार्य से सहमत नहीं है, अत: अहिल्या बाई राघोबा को चाहे जो सजा दे। उनकी इस बात से अहिल्या बाई को उत्साह मिला। वे तुरन्त टुकोजी के साथ सेना लेकर राघोबा से युद्ध करने निकल पड़ीं। वे क्षिप्रा नदी के इस पार थे, जबकि दूसरी छोर पर राघोबा की सेना थी। कहानी ने एक दिलचस्प मोड़ लिया। अहिल्या बाई ने अपने एक सेवक के हाथों एक पत्र राघोबा के लिये भेजा, जिसे पढ़कर राघोबा घबरा गया। उस पत्र में उन्होंने लिखा, ''अगर राघोबा के हाथों से मैं (अहिल्या बाई) हार गई, तो कोई ध्यान नहीं देगा, परन्तु यदि मेरे हाथों तुम (राघोबा) हार गये, तो संसार तुम पर थू-थू करेगा, क्योंकि तुम एक औरत से हार जाओगे''। यह पढ़कर कायर राघोबा घबराकर अपना मन बदल लेता है और कहता है कि मैं युद्ध करने नहीं, बल्कि अहिल्या बाई के बेटे की मृत्यु पर दुख प्रकट करने आया हूँ। इस प्रकार अहिल्या ने अपनी सूझ-बूझ से यह युद्ध टाल दिया। १७६६ ई. में अहिल्या बाई अपनी राजधानी इन्दौर से महेश्वर ले गईं। वहाँ उन्होंने कई मन्दिर बनवाये, विद्यालय खुलवाये और महेश्वर साड़ियों का निर्माण कराना प्रारम्भ किया।

अपने प्रशासन से राज्य को चोर-डाकुओं से मुक्त किया। भील और गौंड जनजातियाँ शान्ति से रहने लगीं। उन्होंने कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया, जैसे बद्रीनाथ, द्वारकानाथ, ओंकारेश्वर, पुरी, गया, रामेश्वरम्, जिनमें सबसे अधिक स्मरणीय काशी का विश्वनाथ मन्दिर है। इस मन्दिर को १११ वर्ष पहले १६६९ में औरंगजेब ने नष्ट कर दिया था। उसका रानी ने १७८० में पुनर्निर्माण किया। उन्होंने १०० मन्दिर, ३० अस्पताल, कई घाट और कुओं का निर्माण कराया। इसके साथ ही अनेकों वृक्ष लगवाये। १७९५ में ७० वर्ष की आयु में महारानी अहिल्या बाई का निधन हुआ। होल्कर राज्य को कठिन समय में योग्य नेत्री मिली। राज्य का संरक्षण और स्थायित्व प्रदान करनेवाली अहिल्या बाई होल्कर का नाम केवल मराठों में ही नहीं, बल्कि पूरे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। ○○○

# महान पत्थर का मुख

## नथानियल हॉथोर्न

(एक अमेरिकी लेखक नथानियल हॉथोर्न द्वारा लिखित 'द ग्रेट स्टोन फेस' नामक प्रसिद्ध कहानी का बांगला अनुवाद पूज्यपाद स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज ने और हिन्दी अनुवाद रायपुर के डॉ. विप्लव दत्ता ने किया है। – सं.)

एक दिन अपराह्न में जब सूर्यास्त होने जा रहा था, तब एक छोटा बच्चा और उसकी माँ अपनी झोपड़ी के दरवाजे पर बैठकर महान पत्थर के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। वे लोग आँखें खोलकर स्पष्ट रूप से महान पत्थर के मुख को देख पा रहे थे, यद्यपि वह मीलों दूर था, तथापि सूर्य का प्रकाश उसके समस्त वैशिष्ट्य को प्रकाशित कर रहा था।

महान पत्थर का मुख क्या था? ऊँचे पहाड़ों के बीच एक सुन्दर घाटी में बहुत से सज्जन लोग निवास करते थे। उन लोगों में कई लोग काठ के घर में निवास करते थे। उनके चारों और पहाड़ पर उठा काला घना वन था। वहाँ कई लोगों का खेत में घर बना हुआ था और वे लोग घाटी की उर्वर भूमि पर कृषि करते थे। उसके बाद गाँव के अन्य लोग एकत्र होकर उँची पहाड़ी क्षेत्र के झरना से कृषि का विकास कर रहे थे और आपसी समझबुझ द्वारा कपड़ा कारखाना आदि को आरम्भ करने का प्रयास कर रहे थे। संक्षेप में कहा जाय, तो ये घाटी के निवासी विभिन्न प्रकार से अपनी-अपनी जीविका का निर्वाह करते, किन्तु सभी इस महान पत्थर के मुख से अपना आन्तरिक आकर्षण का अनुभव करते। यद्यपि इस महान पत्थर का मुख खेल के बहाने निर्मित प्रकृति की एक सुन्दर सृष्टि थी। पहाड़ का जो अंश खड़ा उठा हुआ है, वहाँ, मानो कोई कई बड़े-बड़े पत्थर फेंक दिया है, जो एक निश्चित दूरी से देखने पर मनुष्य का अद्‌भुत सुन्दर मुख लगता है। कई लोग देखकर सोच सकते हैं, जैसे आदिकाल का कोई एक लम्बा शरीरवाला दानव प्रकृति की गोद में अपनी शिल्पकला को प्रस्तुत किया है। उसका चौड़ा ललाट लगभग एक सौ फुट लम्बा, उसकी नाक मानो लम्बी सेतु है, यदि कभी उसकी लम्बी-चौड़ी होठ से आवाज हो, तो वज्रपात जैसे सारी घाटी में फैल जायेगी। बहुत पास से इस मुख की ओर देखने पर कुछ समझ में नहीं आता, लगता है कई पत्थर अव्यस्थित रूप से रखे हुये हैं, किन्तु निश्चित दूरी से इस मुख की ओर देखने पर आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहा जाता। किन्तु देखने पर किसी साधारण व्यक्ति का मुख नहीं लगता, उसके पूर्ण मुख-मण्डल पर एक दिव्य प्रभा, प्रशान्ति विद्यमान है। दूरस्थ इस पहाड़ की घाटी के मेघ की आड़ में से देखने पर लगता है कि मानो जीवन्त इस महान पत्थर का मुख घाटी की ओर देख रहा है। जैसा कि हमने पहले कहा है कि माँ और पुत्र अपनी झोपड़ी के दरवाजे पर बैठकर बातें कर रहे हैं – ''माँ ! मेरी बहुत इच्छा हो रही है कि मैं उस पत्थर के मुख के साथ बात करूँ। उसकी बातें निश्चित ही उसके मुख के सदृश ही सुन्दर होगी। यदि मैं ऐसे किसी व्यक्ति को पाऊँ, तो उसे बहुत प्रेम करूँगा।'' ये सब बातें करते-करते उसके पूरे मुख पर हँसी की रेखा उभर आती है।

पुत्र की ओर देखकर उसकी माँ उत्तर देती है – ''यदि वह प्राचीन भविष्यवाणी सत्य हो, तो हमलोग उस मनुष्य को देखेंगे, जिसका ऐसा ही मुख होगा।'' ''किस भविष्यवाणी की बात कर रही हो माँ। मुझे बताओ।'' अर्नेस्ट जिज्ञासा से उत्सुक हो माँ के मुख की ओर देख रहा है।

तब उसकी माँ ने उसे कहानी सुनाई, जो उसकी माँ ने उसे सुनाई थी, जब वे अर्नेस्ट से भी छोटी थीं। फिर उनकी माँ भी अपने पूर्वजों से सुनी थीं – ''भविष्य में इस पहाड़ी क्षेत्र में ऐसा एक बच्चा जन्म लेगा, जो तत्कालीन समय में सबसे दयालु और महान व्यक्ति होगा और उसके मुख के साथ इस मुख की अद्‌भुत समानता होगा। अभी भी इस पहाड़ी क्षेत्र के कई पुराने लोग इस बात को सत्य मानकर

इस पर दृढ़ विश्वास करते हैं कि उस व्यक्ति को वे अवश्य देख पायेंगे। कई लोग जिन्होंने इस संसार का बहुत कुछ देखा है और वे जानते हैं, वे लोग इस भविष्यवाणी को कवि की कल्पना मानकर उड़ा देते हैं।

माँ के मुख से इस भविष्यवाणी की कहानी सुनकर अर्नेस्ट उल्लसित होकर कहा – ''माँ, माँ, मैं भी विश्वास करता हूँ कि मैं उसे देखूँगा।''

माँ ने उसके उत्साह को देखकर कहा – ''तुम अवश्य देखोगे।'' छोटे अर्नेस्ट के मन में माँ की सुनाई कहानी गहराई से रेखांकित हो गई। वह जब भी उस महान मुख की ओर देखता, तो उसे वह कहानी याद आ जाती।

इस कहानी के बाद घाटी की झोपड़ी में ही अर्नेस्ट ने बहुत वर्ष बिताये। वह छोटा अर्नेस्ट अब बड़ा होने लगा। वह अपने छोटे हाथों से ही बड़े प्रेम से माँ की विभिन्न प्रकार से सहायता करने लगा। इस प्रकार वह प्रसन्नतापूर्वक धीरे-धीरे बच्चे से एक सौम्य और शान्त चरित्रवान युवा हो गया। अर्नेस्ट के कोई शिक्षक नहीं थे। अभाव के कारण वह शिक्षा प्राप्त नहीं कर सका। वह दिनभर कार्य करता और माँ की सहायता करता। दिनभर कार्य करने के बाद अन्त में जब भी उसे अवसर मिलता, तब वह पत्थर के मुख के पास जाकर बैठता और तब तक एक दृष्टि से उसे देखता रहता, जब तक उसे मुख से एक अलौकिक सुन्दर हँसी उसके तन, मन को प्रफुल्लित नहीं कर देती। मान लें कि अर्नेस्ट ने देखा कि इस मुख से जो हँसी आती है, वह संसार के किसी भी वस्तु से नहीं आती। यह पवित्र महान मुख ही अर्नेस्ट का महान शिक्षक था। इस शिक्षक से अर्नेस्ट ने सबको प्रेम करने, सबको अपना बना लेने की शिक्षा प्राप्त की थी।

इसी समय पूरे पवित्र अंचल में यह समाचार प्रसारित हो गया कि उस महान पर्वत के समान एक प्रवासी इस अंचल में आ रहे हैं। वे बहुत पहले ही इस पर्वती क्षेत्र का त्याग कर व्यवसाय करने के लिये दूर समुद्र के पास के शहर में चले गये थे। उनका नाम गैदरगोल्ड था। वे वहाँ दुकानदार बन गये और व्यवसाय में निपुण हो गये और वे इतने धनी हो गये कि उनके धन को गिनने के लिये १०० वर्ष लग जायें। इस बीच उन्होंने अपने अन्तिम दिनों में अपनी जन्मभूमि जाने को सोचा। गैदरगोल्ड की चिन्ता का मूल कारण उनका राजप्रासाद था। पर्वत की घाटी में इस राजप्रासाद को देखकर लगता जैसे स्वर्ग का एक अंश पृथ्वी पर उतर कर आ गया है। विश्व के सभी देशों की उत्कृष्ट वस्तुओं से निर्मित इस राजप्रासाद पर जब सूर्य की किरणे पड़तीं, तब इस भवन से दृष्टि नहीं हटती थी। यद्यपि इस राजभवन में सामान्य घाटीवासियों को प्रवेश करने का अधिकार नहीं था, किन्तु इस भवन की विलासिता, इसके सौन्दर्य के सम्बन्ध में विभिन्न कहानियाँ घाटी में प्रचलित थीं। ऐसा सुना जाता था कि इस राजप्रासाद के पूर्ण होने पर गैदरगोल्ड इस घाटी में निवास करने के लिए आयेंगे।

अन्त में वह दिन आया। अर्नेस्ट भी वाकिसकल घाटी के वासियों के साथ आग्रहपूर्वक राजभवन के बड़े फाटक के सामने खड़ा रहा। आज उसका स्वप्न पूर्ण होगा। इसी समय मार्ग की ओर से उसे कुछ ध्वनि सुनाई पड़ी। सभी लोग मार्ग छोड़कर दूर हट जाते हैं। गैदरगोल्ड की सुसज्जित घोड़ागाड़ी दरवाजे के सामने आकर रुकी। सभी पर्वतवासियों ने गाड़ी को घेर लिया। अर्नेस्ट ने देखा कि गाड़ी में एक पीली चमड़ीवाला वृद्ध अपनी आँखों को चारों ओर घुमाकर देख रहा है। दो पर्वतवासी कुछ सहायता प्राप्त करने की आशा से उस भारी भीड़ को धक्का देकर गाड़ी की खिड़की की ओर हाथ फैलाये हुए थे। गैदरगोल्ड ने अपनी धूँधली दृष्टि से ऊपर करुणा से उन लोगों की हाथों में चार पैसा फेंक दिया। यह दृश्य ही गैदरगोल्ड के चरित्र को समझने के लिए बहुत था। अर्नेस्ट निराश होकर उस भीड़ से बाहर निकल गया और घाटी की ओर एक टक देखा, जहाँ मानो वह पत्थर का मुख कह रहा हो – वह आयेगा डरो मत अर्नेस्ट, वह व्यक्ति आयेगा।

इस घटना के पश्चात् उस क्षेत्र में पर्याप्त समय बीत चुका है। गैदरगोल्ड एक निर्जन स्थान में समाहित किया गया है। समय के साथ मनुष्य के जीवन में कितना परिवर्तन होता है, इसे सभी घाटीवासियों ने गैदरगोल्ड के जीवन में देखा है। अन्तिम समय में उनको पानी पिलाने वाला भी कोई नहीं था। उनका विशाल राजप्रासाद अब एक होटल बन गया था। उनकी विशाल सम्पत्ति अब धूल में मिल गयी है, जिसका अब कोई नामो-निशान नहीं है। उनके परिवार के लोगों ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। घाटीवासियों की दया से उनका अन्तिम संस्कार किया गया था। इधर

अर्नेस्ट भी धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। दूसरों जैसा उसका जीवन भी स्वाभाविक रूप से चल रहा था, किन्तु उसमें कहीं कुछ विशेषता थी।

इस समय उस घाटी-क्षेत्र में फिर से हलचल होने लगी। इस क्षेत्र के एक और निवासी जो गैदरगोल्ड जैसे ही बहुत पहले यहाँ से शहर चले गये थे, उनके यहाँ वापस आने की सूचना से लोगों में उत्सुकता बढ़ गयी। उनका पहले का नाम बहुतों को याद नहीं था, किन्तु वे एक पराक्रमशाली योद्धा के रूप में प्रसिद्ध थे। परन्तु इस क्षेत्र के जिन लोगों ने उन्हें देखा था, वे सभी कहते थे कि इस योद्धा का मुख इस महान पत्थर के मुख जैसा ही है। उन्होंने इस देश के कई युद्धों का नेतृत्व किया था, इसलिये उन पर इस देश और इस क्षेत्र को गर्व है। अत: घाटीवासियों ने इस पराक्रमशाली योद्धा को विशेष रूप से सम्मानित करने का निर्णय लिया। इसके लिये विशेष तैयारी की गयी। उस महान पत्थर की मूर्ति से कुछ दूरी पर ही उस पहाड़ी क्षेत्र में एक सन्ध्या में सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में उस क्षेत्र के सभी लोग उपस्थित हुए। सभी पराक्रमशाली योद्धा के मुख के साथ उस महान पत्थर के मुख की समानता ढूँढने लगे। कोई-कोई जोर से चिल्लाकर बोल उठे – अद्भुत ! ठीक वैसे ही मुख है, एक समान ही चेहरा ! इस भीड़ में सबसे अधिक उत्सुकता से पराक्रमशाली योद्धा को देखने के लिए जो लोग प्रतीक्षा कर रहे थे, उनमें अर्नेस्ट भी था। जब योद्धा लोगों को सम्बोधित करने के लिए खड़े हुए तब अर्नेस्ट ने उनका मुख देखा। उस पराक्रमशाली योद्धा के मुख पर साहसिकता एवं पराक्रम शक्ति का तेज था, परन्तु उस महान पत्थर के मुख जैसी शान्ति, करुणा और प्रेमपूर्ण दृष्टि नहीं थी। उस योद्धा को देखकर अर्नेस्ट मन ही मन कहने लगा कि इस क्षेत्र के लोगों को और प्रतीक्षा करनी होगी।

गैदरगोल्ड एवं पराक्रमशाली योद्धा की घटनाएँ जब उस क्षेत्र के लोग भूलने लगे, तब एक अन्य सूचना ने उस क्षेत्र में फिर से हलचल मचा दी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यह लिखा जा रहा था कि वास्तव में उस महान पत्थर के मुख से मिलते-जुलते एक व्यक्ति इस क्षेत्र में आ रहे हैं। वे गैदरगोल्ड और पराक्रमशाली योद्धा के समान ही कई वर्ष पहले इस घाटी को छोड़कर चले गये थे। बाद में उन्होंने कानून और राजनीतिशास्त्र विषय का अध्ययन किया। वर्तमान में वे एक बड़े राजनेता हैं। उनमें तलवार चलाने की शक्ति तथा बहुत धन-सम्पत्ति नहीं होने पर भी उनकी वाणी ऐसी है कि वे इन दोनों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं।

इस राष्ट्रनायक की वाणी के विषय में ऐसा कहा जाता है कि वे जो कहते हैं, लोग उसे निर्विवाद रूप से मान लेते हैं। वे सच को झूठ और झूठ को सच बनाने में सिद्धहस्त हैं। उनका सबसे शक्तिशाली अस्त्र था उनकी जिह्वा। उनके अनुयायियों ने निश्चित किया कि उन्हें देश का राष्ट्रपति बनाया जाय। इसी समय उनके कुछ अनुयायियों को लगा कि उनके मुख के साथ उस महान पत्थर के मुख में आश्चर्यजनक रूप से समानता है। यह बात सभी ओर प्रचारित होने के बाद सभी उन्हें प्रेम करने लगे और 'पत्थर वृद्ध' कहने लगे। उनके राष्ट्रपति निर्वाचित होने के पहले से ही इस नाम का प्रचार होने लगा।

इसीलिए राष्ट्रपति होने के पहले उन्होंने अपनी जन्मभूमि उस घाटी के क्षेत्र में जाने को सोचा। इस सर्वोच्च राष्ट्रनायक को सम्मान देने के लिए एक अत्यन्त सुन्दर शोभायात्रा का आयोजन किया गया। उस महान राष्ट्रनायक के सम्पूर्ण यात्रा-पथ में रहने की व्यवस्था की गई। देश के उच्च स्तर के सभी लोग इस शोभायात्रा में सम्मिलित हुए। इस शोभायात्रा की पहली पंक्ति में अश्वरोही सेनाप्रधान, उसके बाद की पंक्ति में देश के बड़े-बड़े अधिकारी, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, देश के बड़े-बड़े व्यापारी थे, इनके बाद एक बहुत बड़ी सुसज्जित घोड़ागाड़ी की खिड़की के पास बैठे थे हमारे ये राष्ट्रनायक। इस शोभायात्रा को देखने के लिए रास्ते के दोनों ओर लोगों की भीड़ उमड़ रही थी। इस भीड़ में एक ओर खड़े थे अर्नेस्ट। गैदरगोल्ड एवं पराक्रमशाली योद्धा में महान मुख की समानता न पाकर भी अर्नेस्ट निराश नहीं हुआ। वह उसी उत्साह से उस भीड़ में राष्ट्रनायक की एक झलक देखने के लिए प्रतीक्षा करने लगा। इस शोभायात्रा में यात्रियों के हाथ में बहुत सारे बड़े-बड़े झण्डे थे। उनमें उस महान पत्थर के चेहरे के साथ-साथ उस राष्ट्रनायक के मुख का चित्र बनाया हुआ था एवं उसे देखने से लगता था मानो वे दोनों भाई हैं। अर्नेस्ट को लगा कि यदि इन चित्रों को सच मान लिया जाय, तो भविष्यवाणी इस बार सच होने वाली है। अर्नेस्ट के पास खड़े एक पड़ोसी ने कहा कि अर्नेस्ट देखो, देखो, जैसे एक ही चेहरा है। अर्नेस्ट इस बार स्वीकार करो कि 'भविष्यवाणी सफल हुई'। **(क्रमशः)**

# युवाओं के लिए प्रेरणादायक प्रसंग

**स्वामी गुणदानन्द,** रामकृष्ण मठ, नागपुर

हमारे समाज में ऐसे कई महान् व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने न केवल अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी अपने नैतिक मूल्यों से कभी समझौता नहीं किया। उनका जीवन आज की पीढ़ी के लिए एक आदर्श और प्रेरणा का स्रोत है। आइए, ऐसे कुछ महान् व्यक्तित्वों के जीवन पर दृष्टि डालें और देखें कि कैसे उनकी नैतिकता और संघर्ष युवाओं को मार्गदर्शन देती है।

### १. डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

डॉ. ए.पी.जे.अब्दुल कलाम का जीवन साधारण से असाधारण बनने की कहानी है। एक साधारण मछुआरे के बेटे से लेकर भारत के 'मिसाइल मैन' और राष्ट्रपति बनने तक का उनका सफर प्रेरणादायक है। उन्होंने अपनी गरीबी को कभी अपने सपनों के आड़े नहीं आने दिया। जीवन में जब भी कठिनाई आई, उन्होंने अपनी सच्चाई और परिश्रम का दामन नहीं छोड़ा। डॉ. कलाम ने हमेशा नैतिकता और सादगी को महत्त्व दिया और युवाओं को सपने देखने और उन्हें पूरा करने के लिए प्रेरित किया। डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जीवन संघर्ष और सफलता का प्रतीक है। एक साधारण परिवार में जन्मे डॉ. कलाम ने अपनी मेहनत और ईमानदारी के बल पर भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान और रक्षा क्षेत्र में अतुलनीय योगदान दिया। उन्होंने गरीबी और संसाधनों की कमी के बावजूद अपने नैतिक मूल्यों से कभी समझौता नहीं किया। डॉ. कलाम का जीवन सादगी और ईमानदारी से भरा हुआ था। जब वे राष्ट्रपति थे, तब उनके भाई ने अपने बेटे की शादी के लिए मदद माँगी। डॉ. कलाम ने स्पष्ट कहा कि वे सार्वजनिक पद पर हैं और अपने पद का दुरुपयोग नहीं कर सकते। इसके बजाय, उन्होंने अपनी निजी बचत से थोड़ी आर्थिक मदद की। यह घटना दिखाती है कि उन्होंने कभी भी अपने नैतिक मूल्यों के साथ समझौता नहीं किया। उनका जीवन यह सिखाता है कि सादगी और ईमानदारी का पालन करते हुए भी उच्चतम शिखर पर पहुँचा जा सकता है। उनका सन्देश, **'सपने देखो और उन्हें पूरा करने के लिए काम करो'**, आज भी लाखों युवाओं को प्रेरित करता है।

### २. मैरी क्यूरी (अनुसंधान और विज्ञान)

मैरी क्यूरी का जीवन महिलाओं के लिए प्रेरणा का अद्भुत उदाहरण है। उन्होंने रेडियोधर्मिता (रेडियोएक्टिविटी) के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। एक महिला वैज्ञानिक होने के कारण उन्हें समाज में भेदभाव का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपने लक्ष्य और नैतिकता से कभी समझौता नहीं किया। कठिन परिस्थितियों में भी वे निरन्तर परिश्रम करती रहीं और दो बार नोबेल पुरस्कार जीतकर विश्व को अपना लोहा मनवाया। मैरी क्यूरी, विज्ञान में दो बार नोबेल पुरस्कार जीतने वाली पहली महिला, ने समाज की रूढ़ियों और कठिनाइयों के बावजूद अपने शोध को आगे बढ़ाया। उन्होंने रेडियोधर्मिता पर अपने कार्य के माध्यम से न केवल विज्ञान को नई दिशा दी, बल्कि यह भी सिखाया कि वास्तविक सफलता अपने लक्ष्य के प्रति समर्पण और ईमानदारी से मिलती है। मैरी क्यूरी ने रेडियोधर्मिता पर अपने शोध से विश्व को नई दिशा दी। जब उन्हें अपने आविष्कार के लिए पेटेंट लेने का अवसर मिला, तो उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। उनका मानना था कि यह ज्ञान पूरे मानव जाति की सम्पत्ति है और इसे सीमित नहीं किया जाना चाहिए। उनके इस निर्णय ने दिखाया कि कैसे नैतिकता और मानवता को व्यक्तिगत लाभ से ऊपर रखा जा सकता है। यह कहानी युवाओं को नि:स्वार्थता का मूल्य समझाती है।

### ३. सर एम. विश्वेश्वरैया इंजीनियरिंग के प्रतीक

भारत के महान् इंजीनियर सर एम. विश्वेश्वरैया का जीवन नैतिकता और परिश्रम का प्रतीक है। उन्होंने जल संसाधनों

और बाँधों के निर्माण में अपनी अभूतपूर्व विशेषज्ञता का प्रदर्शन किया। अपने कार्य के दौरान उन्होंने हमेशा ईमानदारी और नैतिकता को महत्त्व दिया। उनकी यह सोच कि 'काम के प्रति निष्ठा सबसे बड़ा धर्म है', आज भी युवाओं को प्रेरित करती है। भारत के महान् इंजीनियर सर एम. विश्वेश्वरैया ने जल संसाधन प्रबन्धन और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया। उन्होंने अपने कार्यकाल में न केवल इंजीनियरिंग की नई ऊँचाइयाँ छुईं, बल्कि हमेशा सच्चाई और अनुशासन को प्राथमिकता दी। उनका जीवन यह सिखाता है कि सच्ची सफलता केवल तकनीकी कौशल में नहीं, बल्कि नैतिकता और निष्ठा में है। सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपने जीवन में हमेशा अनुशासन और ईमानदारी का पालन किया। एक बार उन्होंने एक सरकारी परियोजना में भ्रष्टाचार की सूचना मिलने पर तुरन्त जाँच करवाई। जब दोषी अधिकारियों पर कार्रवाई की गई, तो उन्हें धमकियाँ भी मिलीं, लेकिन वे अपने निर्णय पर अडिग रहे। यह घटना दिखाती है कि नैतिकता और ईमानदारी का पालन करते हुए भी कठिन परिस्थितियों का सामना किया जा सकता है।

### ४. अब्राहम लिंकन : सच्चाई के प्रतीक

अब्राहम लिंकन को 'ईमानदार अबे' कहा जाता था। एक बार, जब वे एक स्टोर में काम करते थे, तो उन्होंने गलती से एक ग्राहक से अधिक पैसे ले लिए। लिंकन ने रात में कई मील चलकर उस ग्राहक को पैसे लौटाए।

इस छोटी घटना ने उनकी सच्चाई का परिचय दिया। आगे चलकर उन्होंने अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में नैतिकता के साथ नेतृत्व किया और दास प्रथा के विरुद्ध अपने सिद्धान्तों पर डटे रहे, चाहे कितना भी विरोध हुआ हो।

### ५. भगत सिंह : देशभक्ति और आत्मसम्मान की मिसाल

भगत सिंह ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अत्याचार और अन्याय का डटकर सामना किया। जब उन्हें ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष करते हुए जेल में बंद किया गया, तब भी उन्होंने फाँसी के समय तक अपनी विचारधारा और नैतिकता को नहीं छोड़ा। उन्होंने न केवल स्वतंत्रता के लिए अपने जीवन का बलिदान दिया, बल्कि यह भी सिखाया कि जब आप नैतिक मूल्यों पर खड़े होते हैं, तो आपकी आत्मा अमर हो जाती है।

### ६. चाणक्य : राजनीति में नैतिकता का पालन

चाणक्य ने अपने समय में राजनीति और कूटनीति के क्षेत्र में नैतिकता का आदर्श प्रस्तुत किया। एक बार जब वे सरकारी कार्यों में व्यस्त थे और एक अतिथि उनके पास आया, तो उन्होंने तत्काल सरकारी दीपक बुझाकर निजी दीपक जलाया। यह घटना उनकी सटीक नैतिकता को दर्शाती है। चाणक्य का जीवन यह सिखाता है कि चाहे कितनी भी बड़ी भूमिका हो, नैतिकता का पालन अनिवार्य है।

### निष्कर्ष

इन महान् व्यक्तित्वों की कहानियाँ यह सन्देश देती हैं कि कठिन परिस्थितियों में भी अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहना ही महानता की पहचान है। कठिन परिस्थितियाँ हमारे नैतिक मूल्यों की परीक्षा लेती हैं। जीवन में कठिनाइयाँ और विपरीत परिस्थितियाँ हर किसी के हिस्से में आती हैं, लेकिन जो लोग अपने आदर्शों और नैतिक मूल्यों से समझौता किए बिना आगे बढ़ते हैं, वे ही इतिहास में अपना स्थान बनाते हैं। ऐसे महान् व्यक्तित्वों का जीवन युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत है। वे यह सिखाते हैं कि सफलता केवल धन और प्रसिद्धि में नहीं है, बल्कि सच्चे मूल्य और नैतिकता में है। नैतिकता और सच्चाई से जीने वाले व्यक्ति न केवल व्यक्तिगत सफलता प्राप्त करते हैं, बल्कि समाज में स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। उनके जीवन से जुड़े प्रेरणादायक प्रसंग न केवल हमें कठिन समय में सही मार्ग दिखाते हैं, बल्कि यह भी सिखाते हैं कि नैतिकता और सच्चाई के साथ किए गए कार्यों का प्रभाव लम्बे समय तक रहता है, उनसे न केवल व्यक्तिगत विकास होता है, बल्कि समाज पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। महान व्यक्तियों का जीवन इस बात का प्रमाण है कि सच्ची सफलता केवल बाहरी उपलब्धियों, ज्ञान और कौशल से नहीं, बल्कि समाज के प्रति योगदान, नैतिकता, सच्चाई और कठोर परिश्रम से मिलती है। इन महान व्यक्तियों की कहानियाँ युवाओं को यह प्रेरणा देती हैं कि कठिन परिस्थितियों में भी नैतिकता और सच्चाई से डिगना नहीं चाहिए। जब आप नैतिक मूल्यों का पालन करते हैं, तो आपकी सफलता स्थायी और सार्थक होती है। आज के युवाओं को इन प्रेरणास्रोतों से सीख लेते हुए अपने जीवन में नैतिकता, अनुशासन और परिश्रम को प्राथमिकता देनी चाहिए। ○○○

# भजन एवं कविता

## हे स्वयं सिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध

### डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

शुद्धोदन नन्दन परम शुद्ध,
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

वह कपिल वस्तु का राजमहल,
जिसमें विकसे तुम राजकमल,
है आज जगत उस पर विमुग्ध ।
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

पा माता तुमको धन्य हुई,
जननी वह जगत-अनन्य हुई।
मायादेवी के सुत प्रबुद्ध,
हे स्वयं सिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

पाया यशोधरा प्राणप्रिया,
जिसने राहुल-सा पुत्र दिया ।
तुम तो पर थे निर्वाण-लुब्ध,
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

यह माया रोक न सकी तुझे,
भव-छाया टोक न सकी तुझे।
तुमको था करना बन्द युद्ध,
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

वह बोधगया का तरु कुलीन,
जिसके नीचे हो ध्यानलीन,
तुमने पाया था ज्ञान शुद्ध।
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

इस जग का फिर से त्राण करो,
जन-गण का फिर कल्याण करो,
सब रक्तपात को पुनः क्रुद्ध,
हे स्वयंसिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध !

## ब्रह्मज्ञान बाँटे जग शंकर आचार्य जी

### श्रीधर प्रसाद द्विवेदी, पलामू, झारखण्ड

शोध के वेदान्त मत, उपनिषद छान के,
अद्वैत प्रकाश किये, शंकर आचार्य जी।
शुद्ध सनातन पथ, जग में प्रशस्त किये,
पंच देव मान्य किये, शंकर आचार्य जी ।

बृहत् प्रस्थान त्रयी, भाष्य शारीरक कर,
ब्रह्म ज्ञान बाँटे जग, शंकर आचार्य जी ।
जगद्गुरु शंकर-सा, ये आद्याचार्य मूर्ति,
आदि गुरु पूज्य बने, शंकर आचार्य जी ।

मण्डन का खंडन से, ज्ञान का औचित्य सिद्ध,
शास्त्रार्थ दिग्विजय की, घोष करी भारती ।
भारती विराजती थी, जिह्वाग्र शंकर मुख,
द्वैताद्वैत भेद ज्ञान, जग में प्रसारती ।

छिन्न कर बौद्ध मत, जयति सनातन का,
संस्कृति स्वरूप आज, लोक में सँवारती ।
चार धाम चार मठ, चतुर्दिग भारत का,
एक सूत्र बाँध दिये, गूँज उठी आरती ।।

## बुद्ध वन्दना

### डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

जरा-मरण के नित वारक तुम, बुद्धदेव भगवान महान ।
जीव दया के परम प्रचारक, तुम ही उत्तम ज्ञाननिधान ।।
दुख कष्टसंतप्त लोक में, तुम प्रकटे प्रभु सुधा समान ।
सब जीवों के दुख को हरकर, उनको दिया शान्ति का दान ।।
भवसागर से पार लगाने, तुम आये प्रभु बनकर यान ।
दया-प्रेम का मार्ग बताकर, भवदुख का तुम किये निदान।।
मुक्तिविधायक बद्धजीव के, दिव्य प्रभा से नित द्युतिमान।
बोधिसत्त्व सम्बुद्ध महाप्रभु, गाऊँ मैं नित तव यशगान ।।

# कृष्ण विरही मीरा के पद

**डॉ. सावती**

**प्राचार्य, दिव्य ज्योति केन्द्रीय विद्यालय, हिसार**

मीराबाई का नाम कृष्ण-भक्त कवियों में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। मीराबाई को साधु-संगति तथा कृष्ण-प्रेम-भाव से दूर करने के लिये इनके देवर राव विक्रम सिंह ने काफी प्रयास किया। लेकिन उन्हें सफलता न मिल पाई। मीराबाई ने अनन्य भाव से कृष्ण की आराधना की। इनकी अधिकांश रचनाओं में कृष्ण के प्रति समर्पण भाव चित्रित हुआ है। प्रस्तुत लेख में हम मीराबाई के पदों में काव्य-कला के अन्तर्गत विरहानुभूति, रहस्यानुभूति, प्रेम भावना, सामाजिक मापदण्ड, श्रृंगार भावना तथा गीति तत्त्व आदि पर प्रकाश डालेंगे। प्रेम जीवन की नैसर्गिक आवश्यकता है। समय तथा आयु के अनुसार प्रेम का रूप परिवर्तित हो जाता है। लेकिन इसकी महत्ता जन्म से मृत्यु पर्यन्त बनी रहती है। मीरा का कोमल भावुक हृदय श्रीकृष्ण प्रेम से परिपूर्ण है। उनके मन में श्रीकृष्ण से मिलन के लिए अत्यन्त व्याकुलता है, बेचैनी है। वह अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहती हैं –

**जोगियाँ से प्रीत कियाँ दुख होई।**
**प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोई।**
**रात दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोई।**
**ऐसे सूरत या जग माँही, फेरि न देखी सोई।**
**मीरा रे प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होई।।**

मीरा का मानना है, उसकी स्थिति को हर कोई नहीं समझ सकता। मीरा की विरहजन्य पीड़ा को श्रीकृष्ण ही समझ सकते हैं या उन जैसा कोई प्रेमी हृदय।

**''को विरहनी को दुख जाणै हो।**

**जा घट विरहा सोई लखि है, कै कोई हरिजन मानै हो।**
**रोगी अंतर बैद बसत है, बैद ही ओखद जांणै हो।**
**विरह दरद उरि अंतरि मांही, हरि विणि सब सुख कांनै हो।**
**दुगधा कारण फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मांनै हो।**
**चात्रग स्वाति बूंद मन मांही, पीव-पीव उकलांगै हो।**
**सब जग कूड़ो कंटक दुनिया, दरध न कोई पिछांणै हो।**
**मीरा के पति रमैया, दूजो नंहि कोई छाणै हो।।''**

प्रेम के दो पक्ष होते हैं – संयोग और वियोग। विरह की अनुभूति जितनी पीड़ादायक व कष्टदायक होती है, ठीक इसके विपरीत संयोग की स्थिति उतनी ही आनन्ददायक व सुखदायक होती है। प्रेम के संयोग पक्ष में व्यक्ति स्वेच्छा से अपने साथी के प्रति समर्पित होता है। दोनों एक-दूसरे की भावनाओं का व मान-सम्मान का ध्यान रखते हैं। दोनों ही एक-दूसरे के अनुरूप कार्य करते हैं तथा वही कार्य करते हैं, जिससे उसके साथी को प्रसन्नता मिले। यथा –

**मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।**
**गिरधर म्हाँरो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।**
**रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।**
**रैणदिना वाके संग खेलूं, ज्यूं ज्यूं वाहि रिझाऊँ।**
**जो पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊँ।**
**मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ।**
**जहाँ बैठावे तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।**
**मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ।।**

मीरा की भक्ति माधुर्य-भाव से परिपूर्ण है। वह सगुण तथा निर्गुण; दोनों रूपों में ईश्वर को मानती है। वह भक्ति से सम्बन्धित किसी सम्प्रदाय विशेष का न तो विरोध करती है और न ही समर्थन करती है। वह सगुण तथा निर्गुण; दोनों रूपों को समान महत्त्व देती है। यद्यपि वह आन्तरिकता से भगवान श्रीकृष्ण की भक्त है तथा अपने मन-मन्दिर में उन्हीं की उपासना करती है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवयित्री कहती है कि –

**म्हारो परनाम बाँके बिहारी जी।**
**मोर मुकुट माथाँ तिलक विराज्याँ, कुण्डल, अलकाँकारी जी।।**
**अधर मधुर धर वंशी बजावाँ, रीझ रीझावाँ, ब्रजनारी जी।**
**या छबि देख्याँ मोह्याँ मीराँ, मोहण गिरवरधारी जी।।**

मीरा ने यद्यपि निर्गुण का विरोध नहीं किया, लेकिन हम सब यह तथ्य भली-भाँति जानते हैं कि उनका मन कृष्ण भक्ति में ही रचा-बसा रहा। मीरा के पदों में अनेक स्थलों पर रहस्यानुभूति की मार्मिकताओं का चित्रण देखने को मिलता है।

**आली री म्हारे नेणा बाण पड़ी।**
**चित चढ़ी म्हारे मधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी।**
**कब से ठाढ़ी पंथ निहारां, अपने भवन खड़ी।**
**अटक्यां प्राण सांवरो प्यारी, जीवन मूर जड़ी।**
**मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोक कह्या बिगड़ी।।**

मनुष्य जीवन में हारता तभी है, जब वह निराशा की जकड़न में जकड़ जाता है। जब उसके अपने उससे दूर चले जाते हैं या अपनों के द्वारा उसके विश्वास को छला जाता है, तब जीवन जीने की उमंग समाप्त हो जाती है और निराशा में मानव-मन में नकारात्मक भाव हावी होने लगते हैं। कवयित्री की अवसाद की स्थिति का चित्रण निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

**होजी हरि कित गये नेह लगाय।**
**नेह लगायं मेरो, हर लीयो रस भरी टेर सुनाय।**
**मेरे मन में ऐसी आवै, मरूँ जहर विष खाय।**
**छाड़ि गए विसवास घात करि, नेह केरी नाव चढ़ाय।**
**मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय।।**

मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताएँ मनुष्य को सामाजिक बनने के लिए प्रेरित करती है व उसे समाज के अनुसार आवश्यक दिशा-निर्देश देती है। मनुष्य को समाज द्वारा निर्धारित मान्यताओं और आदर्शों का पालन करना चाहिए। लेकिन मीरा समाज की चिन्ता नहीं करती है। वह समाज के सभी आक्षेपों को हँसते-हँसते स्वीकारती हुई अपने मन की करती है।

**पग बाँध घुंघरया नच्या री।**
**लोग कह्या मीरा बावड़ी, सास कह्या कुलनासी री।**
**विष रो प्यालो राणां भेज्या, पीवां मीराँ हांसी री।**
**तन मन वांरयाँ हरि चरणां माँ दरसन अमरित प्यास्यां री।**
**मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणां आस्यां री।।**

समाज के मापदण्ड के अनुसार मीरा अपना जीवन व्यतीत करती, तो उसे ईश्वर से दूर ही रहना पड़ता। क्योंकि मनुष्य के जीवन में हर ऐशो-आराम के लिए समय है। केवल बात जब ईश्वर की आती है, तो उसका जीवन इतना व्यस्त है कि उसकी प्राथमिकताओं की सूची में चाहकर भी ईश्वर के लिए समय नहीं है। लेकिन मीरा जीवन का यथार्थ जानती है। अत: वह ऐसी मूर्खता नहीं करती और अपने जीवन को ईश्वर-भक्ति के प्रति समर्पित करती है। यथा –

**प्रभु तो मिलण कैसे होय।**
**पांच पहर धंधे में बीते, तीन पहर रहे सोय।**
**मानुष जनम अमोलक पायो, सोतै डार्यो खोय।**
**मीरा के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो होय।।**

संसार की अज्ञानता व मूर्खता को अभिव्यक्त करते हुए कवयित्री कहती है –

**यौ संसार कुबुध रौ भांड़ो साध संगत ना भावां।**
**साधां जणरी निंदया ठाणां, करम रा कुगत कुमांवां।**
**राम नाम बिनि मुकुति न पावां, फिर चौरासी जावां।**
**साध संगत मां भूल ना जावां मूरिख जणम गुमावां।**
**मीरा रे प्रभु थारी सरणां, जीव परम पद पावां।।**

मीरा ने पदों की अभिव्यक्ति मुख्यत: गीति-शैली में की है। जिससे उनकी भावाभिव्यक्ति में भावों व संवेदनाओं की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। अनुभूति से प्रस्फुटित यह आत्माभिव्यक्ति हृदयस्पर्शी तथा सहज है। राग-रागिनियों में रचित उनके पदों में जीवन के विभिन्न भावों का चित्रांकन है।

**रंग भरी राग भरी राग सूं भरी री।**
**होली खेलयां स्याम संग रंग सूं भरी री।**
**उड़त गुलाल लाल बदला रो रंग लाल।**
**पिचकां, उड़ावां रंग-रंग री झरी री।**
**चोवा चन्दण अरगजा म्हा, कैसर णो गागर भरी री।**

**मीरां दासी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।।**

पाण्डित्य-प्रदर्शन करना मीराबाई का कभी भी उद्देश्य नहीं रहा। कृष्ण के प्रति उनके अगाध प्रेम ने ही उन्हें कृष्णाकाव्य के समुन्नत स्थल तक पहुँचाया। मीराबाई के काव्य में उनके हृदय की सरलता-तरलता तथा निश्छलता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

मीराबाई ने गोपियों की तरह कृष्ण को अपना पति माना। मीरा गोपियों की ही भाँति माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना करती थीं। मीरा का जीवन कृष्णमय था। वे सदैव कृष्ण भक्ति में लीन रहती थीं। मीरा ने 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई, जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।' कहकर पूरे समर्पण के साथ भक्ति की। मीरा के काव्य में विरह की तीव्र मार्मिकता पाई जाती है। विनय एवं भक्ति सम्बन्धी पद भी पाए जाते हैं। मीरा के काव्य में शृंगार तथा शान्त रस की धारा प्रवाहित होती है।

मीराबाई कृष्ण भक्त थी। काव्य-रचना मीरा का कभी भी उद्देश्य नहीं रहा, इसलिए मीरा का कला पक्ष अनगढ़ है, साहित्यिक ब्रजभाषा होते हुए भी उन पर राजस्थानी, गुजराती भाषा का विशेष प्रभाव है। मीराबाई ने गीति काव्य की रचना की तथा उन्होंने कृष्णभक्त कवियों की परम्परागत पदशैली को अपनाया। मीराबाई के सभी पद संगीत के स्वरों में बँधे हुए हैं। उनके गीतों में उनकी आवेशपूर्ण आत्माभिव्यक्ति मिलती है। संगीतात्मकता प्रधान है, शृंगार के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। सरलता और सहजता ही मीरा के काव्य के विशेष गुण हैं ।

मीराबाई का हिन्दी साहित्य जगत में महत्त्वपूर्ण तथा गौरवपूर्ण स्थान है। ये सच्चे अर्थों में श्रीकृष्ण की उपासिका थीं। इनका जीवन पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण के लिए समर्पित था। सभी प्रकार की यातनाओं को नकारते हुए वे अपने भक्ति पथ पर निश्छल भाव से अडिग रहीं। तन-मन-धन से कृष्ण भक्ति के प्रति अपने जीवन को समर्पित कर इन्होंने अपने जीवन को सार्थक बनाया और अपनी अमूल्य रचनाओं से हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को स्वर्णिम काल बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। नि:सन्देह अपनी अमर-अजर रचनाओं के कारण ये सदैव हमारे मध्य उपस्थित रहेंगी। ○○○

**सन्दर्भ ग्रन्थ –** मध्यकालीन काव्य-कुंज–डॉ. रामसजन पाण्डेय

**कविता**

# हे जगद्गुरु शंकराचार्य !

**डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार**

**गूँज रहा है दिग्दिगन्त में, यतिवर तब शुभ नाम ।**
**हे जगद्गुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**रुद्रदेह तज आये प्रभुवर, करने जग-उद्धार,**
**वैदिक धर्म-ध्वजा फहराने, भव से करने पार ।**
**हरने को अज्ञान-तमिस्रा, रहे निरत अविराम,**
**हे जगद्गुरु शंकराचार्य! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**वैदिक-सत्य-सनातन पर, जब संकट गहरा छाया,**
**मत-मतान्तरों के प्रभाव से, सबका मन भरमाया ।**
**ब्रह्म-ज्ञान वितरित करने को, विचरे थे हर ठाम,**
**हे जगदगुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**ब्रह्म सत्य है, जग यह मिथ्या, हुआ तेरा उद्घोष ,**
**जीव ब्रह्म का ही स्वरूप है, निर्मल और निर्दोष ।**
**निज स्वरूप में स्थित हो, नर पाता है विश्राम,**
**हे, जगद्गुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**भारत-भू पर हुआ पुनः, स्थापित वैदिक-राज,**
**निज प्रयास से रख ली तूने, धर्मभूमि की लाज ।**
**सदा रखेंगे याद सकल जन, दुष्कर तेरा काम,**
**हे जगद्गुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**आर्यभूमि के चारों कोनों में स्थित मठ तेरा,**
**देता है संदेश कि भारत है अखण्ड यह मेरा ।**
**इसी धरा पर प्रकट हुए हरि, बनकर राम औ श्याम,**
**हे जगद्गुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

**तेरे ज्ञान-उदधि के सम्मुख, नतमस्तक संसार,**
**है अद्वैत-बोध तेरा, अध्यात्म-जगत का सार।**
**रहे तुम्हारी कृपादृष्टि, इस जग पर आठो याम,**
**हे जगद्गुरु शंकराचार्य ! है शत-शत तुझे प्रणाम ।।**

# प्रश्नोपनिषद् (५९)

## श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

**शंका – भोग-धर्मवति सत्त्व-अङ्गिनि चेतसि पुरुषस्य चैतन्य-प्रतिबिम्ब-उदयो-अविक्रियस्य पुरुषस्य भोक्तृत्वम् इति चेत्।**

**भाष्यार्थ –** भोक्तृत्व-गुणवाले तथा सत्त्वगुण-प्रधान चित्त में, पुरुष के चैतन्य का प्रतिबिम्ब उदित होना, वही अविकारी पुरुष का भोक्तृत्व है, यदि ऐसा माने तो!

**वेदान्ती – न; पुरुषस्य विशेष-अभावे भोक्तृत्व-कल्पना-अनर्थक्यात्। भोग-रूपः-चेद्-अनर्थः पुरुषस्य नास्ति सदा निर्विशेषत्वात् पुरुषस्य कस्य अपनयार्थं मोक्ष-साधनं शास्त्रं प्रणीयते?**

**भाष्यार्थ –** ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि इससे तो पुरुष की कोई विशेषता न होने के कारण उसके भोक्तृत्व की कल्पना ही व्यर्थ सिद्ध होती है। यदि पुरुष के चिर-निर्गुण होने के कारण, उसमें भोग-रूपी अनर्थ है ही नहीं, तो फिर किस दोष के निवारण हेतु मोक्ष के उपाय के रूप में (सांख्य) शास्त्र की रचना हुई है?

**भाष्य – अविद्या-अध्यारोपित-अनर्थ-अपनयनाय शास्त्र-प्रणयनम् इति चेत्; परमार्थतः पुरुषो भोक्ता एव न कर्ता प्रधानं कर्तृ-एव न भोक्तृ-परमार्थ-सद्-वस्तु-अन्तरं पुरुषात् चेत् इयं कल्पना-आगम-बाह्या व्यर्था निर्हेतुका च इति न आदर्तव्या मुमुक्षुभिः।**

**भाष्यार्थ –** यदि अविद्या द्वारा अध्यारोपित जिस अनर्थ को दूर करने के हेतु शास्त्र की रचना हुई है, तो पारमार्थिक रूप से पुरुष भोक्ता ही है, कर्ता नहीं; और प्रधान (प्रकृति) कर्ता है, भोक्ता नहीं। यदि पुरुष से भिन्न अन्य सद्-वस्तु (प्रधान) की कल्पना की जाय, तो वह शास्त्र से असंगत, व्यर्थ तथा निरर्थक होगी, अत: मुमुक्षुओं को उसका आदर नहीं करना चाहिये।

**मध्यस्थ - एकत्वे अपि शास्त्र-प्रणयन-आदि-अनर्थक्यम् इति चेत्।**

**भाष्यार्थ –** (आपके मतानुसार) एकत्व मानें, तो भी शास्त्र की रचना निरर्थक हो जाती है, यदि ऐसा कहें तो?

**वेदान्ती – न, अभावात्। सत्सु हि शास्त्र-प्रणेतादिषु तत्-फलार्थिषु च शास्त्रस्य प्रणयनम्-अनर्थकं सार्थकं वा इति विकल्पना स्यात्।**

**भाष्यार्थ** – नहीं। (अद्वैत में) उसका अभाव होने के कारण। (क्योंकि ज्ञान हो जाने पर शास्त्र की उपयोगिता नहीं रहती।) शास्त्र के रचनाकारों आदि के और उस शास्त्र से लाभ पाने के इच्छुकों के होने पर ही, शास्त्र की रचना सार्थक है या निरर्थक, ऐसा वितर्क हो सकता है।

**भाष्य – न हि आत्म-एकत्वे शास्त्र-प्रणेतृ-आदयः ततो भिन्नाः सन्ति तद्-अभावे एवं विकल्पना-एव-अनुपपन्ना।**

**भाष्यार्थ –** आत्मा के एकत्व की अनुभूति हो जाने के बाद शास्त्र के प्रणेता (तथा अध्येता) आदि भी उस (आत्मा) से भिन्न नहीं हैं; उनका अभाव हो जाने से इस प्रकार का प्रश्न ही नहीं बन सकता।

**भाष्य – अभ्युपगते आत्म-एकत्वे प्रमाणार्थः च अभ्युपगतः भवता यद्-आत्म-एकत्वम्-अभ्युपगच्छता तद्-अभ्युपगमे च विकल्पान्-उपपत्तिम्-आह शास्त्रं ''यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्'' (बृ.उ. २/४/१४) इत्यादि।**

**भाष्यार्थ –** आत्मा के एकत्व का निश्चय हो जाने पर, तुमने उसके प्रतिपादक शास्त्र की उपयोगिता भी स्वीकार कर ली है। इस एकत्व का निश्चय हो जाने पर, शास्त्र – विकल्पों की असम्भवता भी बताता है – ''जिस अवस्था में उसके लिये सब कुछ आत्म-स्वरूप हो जाता है; उस अवस्था में, वह किसके द्वारा किसको देखेगा?''**(क्रमशः)**

# स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर

**स्वामी तन्निष्ठानन्द**

**रामकृष्ण मठ, नागपुर**

(गतांक से आगे)

'मैं सोचती, 'क्या यह पितृ स्नेह है? नहीं, यह उससे कहीं उँची बात है! मैं अपने आँसू रोक नहीं पाती। ऐसा लगता था, मानो मेरे सारे दुख और कष्ट मेरे आँसुओं के साथ लुप्त हो रहे हैं। मुझे लगा कि आखिरकार मुझे एक ऐसी जगह मिल गई है, जहाँ मैं सच्ची सांत्वना और शांति पा सकती हूँ। मुझे आखिरकार कोई ऐसा व्यक्ति मिल गया है जो मेरे लिए सच्चा प्यार और सहानुभूति रखता हो। उनके लिए मैं एक गिरी हुई महिला नहीं थी; मैं एक अछूत नहीं थी; मैं एक घृणा के लायक प्राणी भी नहीं थी! नहीं, मैं स्वामी ब्रह्मानन्द की आध्यात्मिक पुत्री थी! वे मेरे पिता, मेरी शान्ति का निवास और मेरे भगवान थे!'

'स्वामी ब्रह्मानन्द ने उस दिन मुझे बहुत-सी बातें बताईं। मुझे वे सब आज याद नहीं हैं। लेकिन मुझे जो याद है, वह मेरे जीवन का एकमात्र आश्रय है। उन्होंने मुझसे कहा था, 'देखो बेटी, यह दुनिया दुखों से भरी है। ऐसा मत सोचो कि हमने कभी दुख नहीं झेले हैं। जब पहली बार मैं ठाकुर के पास गया था, तब मैं युवा था। मैं अपनी साधना करता था, लेकिन मुझे शान्ति नहीं मिलती थी। मेरे मन में कई विचार उठते थे। कभी-कभी मैं सोचता था कि मुझे अभी तक शान्ति क्यों नहीं मिली! ऐसा सोचते-सोचते एक दिन मुझे लगा कि मैं ठाकुर के पास भी नहीं जाऊँगा। मैं चुपचाप भाग जाऊँ! तभी मैंने ठाकुर को अपने सामने प्रत्यक्ष खड़े देखा। ठाकुर मुझसे बोले, 'तुम क्या सोच रहे हो? तुम बहुत दुखों से गुजर रहे हो, है न?' मैं चुप रहा। फिर उन्होंने धीरे से अपने हाथ से मेरे सिर को सहलाया। तुरन्त मेरा सारा दुख दूर हो गया! तब मुझे बहुत शान्ति और आनन्द का अनुभव हुआ।' 'स्वामी ब्रह्मानन्द की बातें सुनकर, अचानक मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'पिताजी, मैं भी अंदर से जल रही हूँ। बहुत कष्ट है, अब और सहन नहीं होता। इसलिए मैं बेचैन होकर इधर-उधर भटकती रहती हूँ। पिताजी, क्या आप मेरे उद्विग्न हृदय को शान्त कर देंगे?'

'बड़े स्नेह और सहानुभूति के साथ उन्होंने कहा, 'बेटी, ठाकुर से प्रार्थना करो। कोई डर नहीं है। वे केवल हमारे कष्ट दूर करने के लिए आए हैं। उनका नाम जपो। आरम्भ में तुम्हें वह थोड़ा मुश्किल लगेगा बाद में ठाकुर सब ठीक कर देंगे। डरो मत बेटी, डरने की कोई बात नहीं है। अन्ततः तुम्हारा जीवन सुखदायी और आनन्दमय हो जाएगा।'

तारा अपने गुरु के निकट रहना चाहती थी, इसलिए उसने भुवनेश्वर में लिंगराज शिव मन्दिर के पश्चिम में

लिंगराज शिव मन्दिर, भुवनेश्वर

एक भूखण्ड खरीदा। महाराज जमीन देखने गए और वहाँ ध्यानमग्न मुद्रा में खड़े थे। तब उन्होंने कहा – 'यह आध्यात्मिक साधना के लिए एक अद्भुत स्थान है। यह स्थान बहुत पवित्र है और भगवान शिव (लिंगराज मन्दिर) ईशान्य में हैं।' बाद में तारा ने उस स्थान पर एक कमरा बनवाया। उस कमरे में उसने ठाकुर का एक फोटो रखा। वह फोटो को फूलों और मालाओं से सजाती और फोटो के सामने ऐसे गाती और नाचती, जैसे कि ठाकुर स्वयं देख और सुन रहे हों। ठाकुर के प्रति भक्ति और श्रद्धा दिखाने का यह उसका तरीका था।[६०]

सन् १९२१ तक तारा ने जबरदस्त उत्साह और लगन के साथ अपना अभिनय जारी रखा। लेकिन जब उनके गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द १९२२ में महासमाधि में लीन हुए तो तारा के भीतर वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। उसने भुवनेश्वर में एक घर बनाया और सब कुछ छोड़ वहीं रहने लगी। इसके उपरान्त उसकी अभिनय में सारी रुचि खत्म हो गई और वे गहरे अवसाद में चली गईं। जब स्वामी शिवानन्द ने उसके बारे में सुना तो उन्होंने तारा को बेलूड़ मठ बुला भेजा। वह महाराज के लिए खूब रोई तब स्वामी शिवानन्द ने उसे सान्त्वना दी। उन्होंने उसे महाराज के नाम पर अपनी जमीन पर एक मन्दिर बनाने के लिए कहा। तारा ने स्वामी शिवानन्द की सलाह मान ली। अपरेश (उसके पति) ने मन्दिर का नाम 'राखाल-कुंज' रखा। (राखाल स्वामी ब्रह्मानन्द का पूर्वाश्रम का नाम था और कुंज का अर्थ है 'उद्यान, मण्डप')।

स्वामी शिवानन्द राखाल-कुंज में श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामी विवेकानन्द की प्राणप्रतिष्ठा करने भुवनेश्वर पधारे। बाद में स्वामी सुबोधानन्द ने एक दिन विशेष पूजा तथा होमहवन के साथ राखाल-कुंज की वेदी के नीचे स्वामी ब्रह्मानन्द की अस्थियाँ स्थापित की। इस तरह तारा का स्वप्न पूर्ण हुआ। वह अपनी साधना-स्थली को लेकर बहुत उत्साहित थी और वहाँ पूजा तथा ध्यान-धारणा में घण्टों बिताती। हालाँकि, उसकी इच्छा ठाकुर को अन्नभोग अर्पित करने की थी, लेकिन वह अपने आपको अयोग्य अनुभव करती। एक दिन स्वामी अखण्डानन्द राखाल-कुंज आये और उन्होंने कहा, 'बेटी तारा, यह क्या है? ठाकुर क्षीण लग रहे हैं। क्या तुम उन्हें अन्नभोग नहीं चढ़ाती?' अपने पापमय अतीत पर शर्मिंदा होकर तारा ने कहा, 'नहीं महाराज।' इस पर स्वामी अखण्डानन्द ने उसे प्रतिदिन ठाकुर को अन्नभोग तथा दूध अर्पित करने को कहा। जब तारा ठाकुर के अन्तरंग शिष्य की बातें सुन रही थी तब उसकी आँखों में आँसू आ गए।

५४ वर्ष की आयु में तारा अंततः रंगमंच से निवृत्त होकर भुवनेश्वर के राखाल-कुंज में रहने आयी और वहाँ वह १२ वर्षों तक रही। उनकी बेटी प्रतिभा उनके साथ रहती थी। तारा घण्टों मन्दिर में बिताती और उसकी पूजा की पद्धति अनूठी थी। उसकी एकाग्रता इतनी गहन होती कि एक दिन उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि उसकी गौशाला में आग लगी हुई है। पड़ोसियों ने आग बुझाने की कोशिश की, लेकिन जब उन्होंने उसे बुलाया तो वे उसका ध्यान भंग नहीं कर सके। एक अन्य दिन दोपहर के समय स्वामी सुबोधानन्द राखाल-कुंज गए तब उन्हें वहाँ कोई नहीं मिला। मन्दिर के द्वार और खिड़कियाँ बंद लग रही थीं और पूरा क्षेत्र शान्त था। तब उन्होंने देखा कि एक खिड़की आंशिक रूप से खुली थी। जब उन्होंने उसमें से झांका तो उन्होंने तारा को ठाकुर की फोटो के सामने नृत्य करते देखा। उसे दुनिया का कोई भी होश नहीं था। जैसे वह हमेशा अपने अभिनय से थिएटर में दर्शकों को आनन्द प्रदान करती, उसी तरह वह अपने अभिनय और नृत्य से ठाकुर की अर्चना कर रही थी। उसकी साधना में व्यवधान डाले बिना स्वामी सुबोधानन्द मठ लौट आए।[६१]

उन दिनों बहुत से लोग वायु परिवर्तन के लिए भुवनेश्वर जाते थे। वहाँ रहते हुए उनमें से कुछ लोग भुवनेश्वर स्थित रामकृष्ण मठ भी जाते। एक बार क्षितिजबाबू नामक एक सज्जन अपने बहनोई योगेश के साथ खुलना से दर्शन के लिए आए। वे अक्सर भुवनेश्वर मठ आते। स्वामी ब्रह्मानन्द उन्हें पसन्द करते, विशेषकर योगेश को। एक बार बातचीत के दौरान योगेश ने कहा, 'हम अपने देहात में बहुत उच्च गुणवत्ता वाले चावल उगाते हैं।' स्वामी ब्रह्मानन्द ने तब उनसे कहा, 'यह बहुत अच्छा है। आप हमारे मन्दिर में ठाकुर के भोग के लिए कुछ चावल भेजने की व्यवस्था क्यों नहीं करते?' कुछ दिनों बाद योगेश चावल से भरा एक छोटा सा पोस्टल पार्सल लेकर मठ आए और स्वामी ब्रह्मानन्द से कहा, 'महाराज, यह चावल हमारे देहात से आया है।' पैकेट का छोटा आकार देखकर सेवक बहुत खुश नहीं हुए। उसमें शायद एक या डेढ़ सेर (तीन पौंड) चावल ही था। बीच-बीच में रामबाबू की जागीर झंकार से मठ के लिए कई मन चावल (एक मन ८२ पौंड के बराबर होता है) भेंट स्वरूप आता था। लेकिन जब स्वामी ब्रह्मानन्द ने योगेश द्वारा लाए गए चावल देखे तो वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'बहुत बढ़िया! यह बहुत अच्छी गुणवत्ता का चावल है! ठाकुर के लिए इसी चावल से पायस (खीर) बनेगी।' सप्ताह भर वे योगेश द्वारा लाए गए चावल की गुणवत्ता की प्रशंसा करते रहे। कुछ दिन वे भंडार में जाकर देखते कि चावल ठीक है या नहीं। वे भंडारी साधु को चेतावनी देते हुए कहा, 'ध्यान रखना कि इस चावल का एक भी दाना बर्बाद न हो या चूहे न खा जाएँ। अगर ऐसा हुआ तो तुम्हें परिणाम भुगतने होंगे। मैं अपनी बेंत से तुम्हारा सिर फोड़ दूँगा!' (यह उन्हें

बहुत सावधान रहने के लिए कहने का एक विनोदी तरीका था। महाराज निश्चित रूप से अपनी बेंत से किसी को नहीं मारते!) चावल की प्रशंसा करते हुए वे योगेश की भी प्रशंसा करते। अंतत: उस चावल का उपयोग ठाकुर के लिए पायस बनाने में हुआ। स्वामी ब्रह्मानन्द ने उस चावल की इतनी प्रशंसा इसलिए की कि वह योगेश ने बड़े प्रेम और भक्ति से दिया था।[६२]

भुवनेश्वर मठ से कुछ दूरी पर धान लगाने योग्य जमीन बहुत कम कीमत पर बिक्री के लिए उपलब्ध थी। उस खेत के चावल की पैदावार की बिक्री से मठ का वार्षिक खर्च पूरा हो सकता और कुछ चावल भी बच जाता। शुरू में स्वामी ब्रह्मानन्द उस खेत को लेकर बहुत उत्साहित थे, लेकिन बाद में उसे खरीदने में उनकी रुचि खत्म हो गई। अगर कोई जमीन खरीदने की बात उठाता, तो वे कहते, ''ठीक है, इस बारे में विचार करते हैं।'' अंत में उन्होंने सभी से कहा, ''मठ के लिए ऐसी संपत्तियाँ न खरीदना ही बेहतर है। अगर हम संपत्तियाँ हासिल करते हैं, तो हम मजदूरों पर अत्याचार कर सकते हैं।'' संपत्ति खरीदने के बारे में उनका विचार बदलने का कारण यह था कि मठ में काम का प्रबंधन करने वाले या उस क्षेत्र में राहत कार्य करने वाले लोगों के बारे में कुछ शिकायतें उनके कानों तक पहुँची थीं।[६३]

स्वामी मुक्तेश्वरानन्द लिखते हैं, 'एक बार स्वामी ब्रह्मानन्द ने भुवनेश्वर मठ में हमसे कहा, 'रसोई का भंडार खाली है, क्योंकि तुम लोग अपनी आध्यात्मिक साधना ठीक से नहीं करते। यदि तुम आध्यात्मिक साधना सही ढंग से करते हो, तो ठाकुर ही तुम्हारे भोजन-पानी की व्यवस्था करेंगे।''[६४]

१९२० में भुवनेश्वर मठ में निम्नलिखित घटनाएँ घटीं : निरोद, द्विजेन, अमिय, हरिपद तथा कुछ अन्य ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य दीक्षा लेने हेतु स्वामी ब्रह्मानन्द के पास भुवनेश्वर आए। मैं (परेशनाथ गुप्त) विवाहित था तथा वहाँ दर्शन के लिए आया था। जब उन दीक्षार्थियों ने ब्रह्मचर्य-दीक्षा ग्रहण की, तब मुझे लगा कि मैंने विवाह करके उस अद्भुत अवसर को खो दिया है। इस विचार ने मुझे बहुत दुखी कर दिया। मेरी मानसिक स्थिति को समझते हुए स्वामी ब्रह्मानन्द ने मुझसे कहा, 'तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तेरे आध्यात्मिक जीवन का पूरा भार वहन करूँगा।' लेकिन अपने दुर्बल मन के कारण उनके आश्वासन पर मैं विश्वास न कर सका। इसलिए मैं उनसे कई प्रश्न पूछता रहा। थोड़ा-सा भी नाराज न होते हुए उन्होंने मुझे फिर से वही आश्वासन दिया। अगले दिन सुबह मैं उनके साथ टहलने गया। हम काफी लंबी दूरी तक चले। चलते समय उन्होंने मुझे कई बातें कहीं। मैंने एक तालाब से थोड़ा पानी लाकर उन्हें हाथ धोने के लिए दिया। जब मैं पानी लेने तालाब की ओर जा रहा था, तो वे चिन्तित हो गए कि कहीं मैं फिसल कर तालाब में न गिर जाऊँ। मेरे प्रति स्नेहवशात् चिन्तित होकर उन्होंने मुझे कई बार सावधान रहने को कहा। मैं जब भी मठ में जाता था, तो वे प्राय: कहा करते थे, 'यहाँ अच्छा भोजन बहुत दुर्लभ है। हमें चिन्ता है कि हम तुम्हें क्या खिला पायेंगे। अफसोस ! हम तुम्हें अच्छा भोजन नहीं दे पाए!'[६५]

स्वामी निर्वाणानन्द ने राजा महाराज के बारे में निम्नलिखित घटना सुनाई जब वे भुवनेश्वर मठ में थे – उस दिन चन्द्रग्रहण था। शाम को महाराज मठ के बरामदे में एक आराम कुर्सी पर बैठे ध्यान कर रहे थे। मैं सीढ़ियों के नीचे उनके पास बैठा था। मैं आँखें बन्द कर जप कर रहा था। ग्रहण समाप्त होने ही वाला था। जप करते समय मुझे अपने पैर पर कुछ ठंडा अनुभव हुआ। अपनी आँखें खोले बिना मैंने उस वस्तु को अपने हाथ से हटा दिया। कुछ समय बाद मुझे वही स्पर्श अनुभव हुआ। जब मैंने अपनी आँखें खोलीं, तो पहले मुझे लगा कि वह एक मेंढक होगा, लेकिन जब मैंने उसे हटाने की कोशिश की, तो एक साँप को देखकर मैं चौंक गया। चाँदनी रात में जब मैंने उसे देखा, तो पाया कि वह एक विषैला नाग था। वह मेरे पैर पर कुंडली मारे बैठा था। भुवनेश्वर विषैले साँपों के लिए विख्यात् था। मैं चिल्लाया, 'साँप!' मेरी आवाज से उनका ध्यान भंग हुआ। यह देख महाराज ने कहा, 'चुप रहो और हिलो मत।' चाँदनी रात में मैंने देखा कि साँप धीरे-धीरे दूर जा रहा है। महाराज ने कहा, 'गुरु की कृपा से इस बार तुम बच गए।'[६६]

एक दिन भुवनेश्वर मठ में महाराज सीढ़ियों के पास खड़े थे और ऊपर जाने वाले थे। अचानक कहीं ऊपर से रंग (अबीर) उनके शरीर और पैरों पर आ गिरा। पूरी तरह खोजने पर भी छत पर कोई नहीं मिला। डॉ. रतिकान्त पीछे खड़े थे, महाराज ने उनसे पूछा, 'क्या आज रंगोत्सव (दोल पूर्णिमा) है?' किसी को यह ज्ञात नहीं था। पंचांग देखने पर पता चला कि उस दिन रंगोत्सव (दोल पूर्णिमा) था। डॉक्टर एक भक्त और विनोदी व्यक्ति थे। उन्होंने फर्श से रंग उठाया और अपने माथे पर लगा लिया। फिर रंग मंगवाया गया और

महाराज ने मन्दिर में जाकर ठाकुर को रंग अर्पित किया। वहाँ उपस्थित अन्य लोगों ने भी ऐसा ही किया। फिर सभी ने एक-दूसरे के साथ खुशी-खुशी रंग खेला। महाराज ने भी इसमें बड़े आनन्द से भाग लिया।[६७]

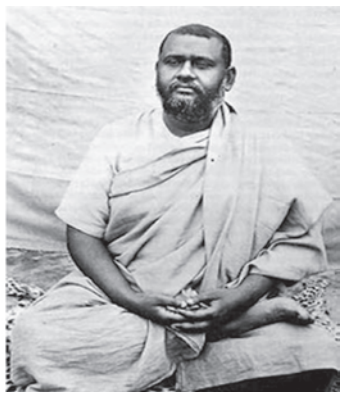

सन् १९७० में जब स्वामी भास्करानन्द बेलूड़ मठ में थे, तब उन्हें स्वामी गंगेशानन्द से निम्नलिखित घटना सुनी थी – यह घटना कई वर्ष पूर्व भुवनेश्वर मठ की है। उस समय रामकृष्ण संघ के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी वहाँ निवास कर रहे थे। एक दिन उन्होंने कनिष्ठ संन्यासी स्वामी गंगेशानन्द को बुलाया और कहा, 'मेरे लिए थोड़ा पवित्र गंगाजल ले आओ।' स्वामी गंगेशानन्द ने गंगाजल की एक छोटी बोतल स्वामी ब्रह्मानन्द को लाकर दी, जिसे उन्होंने अपने शरीर पर छिड़का। बोतल एक ओर रखकर स्वामी ब्रह्मानन्द ने अपने सेवक स्वामी निर्वाणानन्द को बुलाया। जब वे आए, तो स्वामी ब्रह्मानन्द ने अलमारी में रखी एक पुस्तक की ओर इशारा किया और स्वामी निर्वाणानन्द से उसे लाने को कहा। तब स्वामी ब्रह्मानन्द एक कुर्सी पर बैठ गए, मानो वे पुस्तक पढ़ना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने पुस्तक नहीं खोली। इसके बदले उन्होंने उस पुस्तक की ओर कुछ देर तक देखा और फिर अपनी आँखें बन्द कर कुछ देर के लिए ध्यान की तरह बैठे रहे। फिर उन्होंने पुस्तक स्वामी निर्वाणानन्द को लौटा दी और उन्हें पुस्तक को वापस अपनी जगह पर रखने के लिए कहा। उसके बाद स्वामी ब्रह्मानन्द उठे और कमरे से बाहर चले गए। स्वामी गंगेशानन्द दूर से सब कुछ देख रहे थे। उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि महाराज को पुस्तक छूने से पहले गंगाजल से पवित्र होने की आवश्यकता क्यों पड़ी? वह कौन-सी पवित्र पुस्तक हो सकती है, जिसे इस तरह के शुद्धिकरण की आवश्यकता है? अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए, स्वामी गंगेशानन्द ने पुस्तक को उसी स्थान से निकाला। उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह कोई धार्मिक पुस्तक नहीं थी; वह इमर्सन के निबन्धों की एक प्रति थी। स्वामी गंगेशानन्द पहले तो समझ नहीं पाए कि स्वामी ब्रह्मानन्द ने पुस्तक को इतना पवित्र क्यों माना। लेकिन जब उन्होंने पुस्तक खोली, तो उन्होंने पहले पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द का हस्तलिखित देखा, जो दर्शाता है कि उन्होंने यह पुस्तक स्वामी ब्रह्मानन्द को एक प्रेमपूर्ण उपहार के रूप में दी थी। स्वामी गंगेशानन्द अब समझ गए थे कि यह पुस्तक स्वामी ब्रह्मानन्द के लिए इतनी पवित्र थी, क्योंकि उसे स्वामीजी ने उन्हें भेंट दी थी। श्रीरामकृष्ण के अनुसार स्वामी विवेकानन्द एक मुक्तात्मा के रूप में जन्मे थे और उनके सारें शिष्यों में वे सबसे महान थे। श्रीरामकृष्ण उन्हें प्राचीन ऋषि नर-नारायण का अवतार मानते थे। यह घटना दिखाती है कि स्वामी ब्रह्मानन्द, जो एक महान सन्त थे, उनको अपने गुरुभ्राता स्वामी विवेकानन्द के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा तथा भक्ति थी। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त पुस्तक से उनकी स्मृतियाँ जुड़ी हुई थीं, जो स्वामी ब्रह्मानन्द की आध्यात्मिक भावना को जागृत करती।[६८] **(क्रमशः)**

**सन्दर्भ सूत्र – ६०.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द, लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-७८-८०, गिरीश चन्द्र घोष (बंगाली) लेखक-स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-२०१-२०२, स्वामी ब्रह्मानन्द ॲज वी सॉ हिम, लेखक-स्वामी आत्मश्रद्धानन्द पृष्ठ-१६३ **६१.** गिरीशचन्द्र घोष (बंगाली) लेखक-स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-२०३-२०४, २०५ **६२.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द लेखक- ब्र. अक्षयचैतन्य अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-८७-८८ **६३.** वही, पृष्ठ-१४० **६४.** वही, पृष्ठ-२०३ **६५.** वही, पृष्ठ-२५३ **६६.** देबलोकेर कथा (बंगाली) लेखक-स्वामी निर्वाणानन्द, पृष्ठ-१२० **६७.** देबलोकेर कथा, पृष्ठ-१००-१०१ **६८.** लाईफ इन इन्डियन मोनॅस्टरीज (अंग्रेजी) लेखक- स्वामी भास्करानन्द पृष्ठ-९-११

**पहले-पहल जप-ध्यान का अभ्यास करने की बहुत आवश्यकता है। यदि अच्छा न भी लगे, तो भी नित्य अभ्यास करना होगा। केवल अभ्यास से बहुत काम बन जाता है। प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे जप करना चाहिए। किसी निर्जन बगीचा में, या नदी के किनारे, या बड़े मैदान में अथवा स्वयं के कमरे में चुप बैठे रहने से भी बहुत समय काम बन जाता है।**

**– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज**

# श्रीरामकृष्ण-गीता (४६)

**(आठवाँ अध्याय ८/९)**

**स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ**

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

**साधूनां संगलाभाय तथा संसारिणो जनाः।**

**आगम्य बहुशस्तत्र विषयं कथयन्ति ते।।५६।।**

– वैसे ही संसारी लोग साधुसंग करने आने पर विषय की बात ही अधिक कहते रहते हैं।

**मूलं सर्वस्य विज्ञेयं मनस्तदेकमेव हि।**

**ज्ञानाज्ञानानि सर्वाणि मनोऽवस्थाविशेषतः।।५७।।**

– मन को ही सबका मूल जानना। ज्ञान कहो या अज्ञान कहो, सभी मन की अवस्थायें हैं।

**मनसि जायते बद्धो मनसि मुक्त एव च।**

**पापी साधुरसाधुश्च मनस्येव च पुण्यवान्।।५८।।**

– मनुष्य मन से ही बद्ध और मन से ही मुक्त होता है, मन से ही साधु और मन से ही असाधु और मन से ही पापी और मन से ही पुण्यवान है।

**नित्यं चेन्मनसेशस्य स्मरणं मननं कृतम्।**

**पुनः संसारिणां नास्ति साधनस्य प्रयोजनम्।।५९।।**

– संसारी जीव मन से सर्वदा भगवान का स्मरण-मनन कर सकता है, इससे उसे अन्य किसी साधना की आवश्यकता नहीं होती है।

**ज्ञानं संलभ्य संसारे वर्तन्ते ज्ञानिनः कथम्।**

**अन्तर्बहिश्च पश्यन्ति काचगृहस्थिता यथा।।६०।।**

– ज्ञान की प्राप्ति होने पर ज्ञानी संसार में कैसे रहते हैं, जानते हो? जैसे सीसे के कक्ष में बैठने पर अन्दर और बाहर दोनों ही देखा आ सकता है।

**विद्ध्येतावद्धि तात्पर्यं गीतापाठेन यद्भवेत्।**

**तद्वै द्वादशकृत्वं तु गीतागीतेत्युदीरणात्।।६१।।**

– गीता पढ़ने से जो होता है, बारह बार गीता शब्दोच्चारण करने पर वही होता है, यही तात्पर्य समझना।

**तागी तागीति तज्ज्ञेयमर्थश्चास्य यथा भवेत्।**

**जीव सर्वान् परित्यज्येश्वरपादाम्बुजं भज।।६२।।**

**।। ॐ श्रीरामकृष्णगीताय संसारे साधन नामक अष्टम अध्याय।।**

– जैसे तागी, तागी का अर्थ होता है, हे जीव! सब कुछ त्याग कर भगवान के चरण-कमलों का आश्रय लो।

।। ॐ श्रीरामकृष्णगीता का आठवाँ अध्याय समाप्त ।।

**(क्रमशः)**

**प्रश्न – शरीर के प्रति आसक्ति कैसे दूर करें?**

**श्रीरामकृष्ण – यह शरीर नाशवान वस्तुओं से बना हुआ है। इसमें हड्डियाँ, मांस, रक्त, मल, मूत्र आदि गन्दी चीजें ही भरी हुई हैं। सदा इस प्रकार का विचार करते रहने पर देहविषयक आसक्ति चली जाती है।**

**कविता**

## जो चरणों में सन्तों के बैठेंगे हम

**चन्द्रमोहन, दिल्ली**

**हमारा न कोई, किसी के न हम ।**
**आनन्द सिन्धु के कतरे हैं हम ।।**
**वहीं से चले थे, वहीं पर मिलेंगे ।**
**ठहरे जो उसकी ही, संतान हम ।।**
**जो चरणों में संतों के, बैठेंगे हम ।**
**तब उस डगर पर, बढ़ेंगे कदम ।।**

# होइहि सोइ जो राम रचि राखा

**राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन**

रामचरित मानस में शिव-पत्नी सती द्वारा साक्षात् शिव वाक्य की अवहेलना करके जो प्रभु राम की परीक्षा ली गई है, उस प्रसंग में यह शिव-वाक्य है – मेरे कहने से भी संशय नहीं जा रहा, इसका अर्थ है विधाता को कुछ और ही स्वीकार है। सती का अवश्य कुछ अनिष्ट होने वाला है, ऐसा कहकर भगवान शिव प्रभु-नाम जप करने लगे।

विचार करने पर स्पष्ट है, यहाँ जिसे राम रचि राखा अथवा विधि का विधान कहा गया है, वह प्रारब्ध ही है, उसे ही देव, अदृष्ट, भाग्य आदि नामों से पुकारा जाता है। मनुष्य जो भी कर्म करता है, वह शुभ हो या अशुभ हो, वही कर्म दैव बनकर उसके पीछे-पीछे चलता है, समय आने पर वह दैव सुख अथवा दुख प्रदान करता है। बिना पूर्व कृत्य के दैव भी कभी किसी को कुछ नहीं दे सकता। कर्म फल के सम्बन्ध में गीता का यह श्लोक दर्शनीय है –

**अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।**
**भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्यासिनां क्वचित्।।**

**(भगवद्गीता, १८.१२)**

अर्थात् कर्मों का फल तीन तरह का होता है। १. मनचाहा (इष्ट) २. मन के विपरीत (अनिष्ट) ३. मिश्र (मिलाजुला)। यह कर्मफल मरने के बाद ही होता है तथा उन्हीं को मिलता है, जो कर्ताभाव से कर्मों को करते हैं। संन्यासियों अर्थात् अकर्ता भावापन्न महापुरुषों का कोई कर्मफल नहीं होता। दूसरे शब्दों में कहें, तो देहाभिमानी मनुष्य जो अपने को कर्मों का कर्ता समझते हैं, अपने शुभ कर्मों से स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, पाप कर्मों से नरक एवं निरर्थक योनियों को प्राप्त होते हैं तथा मिले-जुले कर्मों से पुनः मनुष्य होकर मृत्यु लोक में जन्म लेते हैं।

यह बात भी यहाँ द्रष्टव्य है कि प्रारब्ध का जोर शरीर पर ही चलता है। प्रारब्ध अथवा दैव शरीराभिमानियों के लिए ही हैं। प्रारब्ध अथवा विधि के विधान के अनुसार जन्म-मृत्यु का क्रम चलता रहता है, इसी को भव-प्रवाह, संसृति-क्लेश अथवा ८४ का चक्कर कहते हैं। यह संसृति-चक्र काल के द्वारा चलाया जाता है। काल सदा सावधान रहकर प्रमादी जीवों के मनोरथों को कुचलता रहता है तथा जीव दुख के बाद दुख भोगते रहते हैं। इस काल-चक्र से निकलने का सूत्र गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस पंक्ति में दिया है – **अस कहि लगे जपन हरिनामा।**

राम रचि राखा अर्थात् अपने वे पूर्व कर्म जो प्रारब्ध बन चुके हैं, वे अपना फल अवश्य देकर रहेंगे, उन्हें टाला नहीं जा सकता, न पलटा जा सकता है। अर्थात् जो घटना प्रारब्धवश घटनी है, घटेगी ही। जीव अपनी बुद्धि लगाकर उसे टालने या बदलने का प्रयास करता है और उस चक्कर में और नये प्रारब्ध कर्मों का निर्माण कर लेता है। अर्थात् स्वयं ही अपने लिये भविष्य में और शरीरों का निर्माण कर लेता है और जन्म और मृत्यु की तैयारी कर लेता है। यहाँ भगवान शिव जो कर रहे हैं, वह करने से इस चक्र (आवागमन) का भेदन किया जा सकता है। कैसे? शरीर पर प्रारब्ध प्रभाव डालेगा, तो शरीर को सुख या दुख होगा, वह होकर रहेगा। अब यदि हम अपने मन-बुद्धि-चित्त को शरीर के साथ न जोड़ें, उसे भगवन्नाम के जप में लगा दें, तो प्रारब्ध शरीर को फल देकर नष्ट हो जायेगा। नया प्रारब्ध नहीं बनेगा। संसृति-चक्र नष्ट हो जायेगा। इसी को परमगति, भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्ष कहते हैं।

क्योंकि जीव एक क्षण भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता – **'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत (गीता ३.५)**। इसलिए जब तक हम अकर्ता की स्थिति में न आ जायें, तब तक हरिनाम-जप करके अन्य कर्म होने से रोक सकते हैं। हरिनाम का जप परलोक का पाथेय है, इसे कर्म की श्रेणी में नहीं रख सकते।

शिवजी हमें अकर्मण्य होने की शिक्षा नहीं दे रहे हैं कि जो होना होगा, वह तो होगा ही, इसलिए हम उसे होने देने की प्रतीक्षा हाथ पर हाथ रखकर करते रहें, कुछ न करें। यह अकर्मण्यता होगी। इसलिए कहीं पलायन न करके उन्हीं परिस्थितियों में हरि-नाम जप करें।

प्रारब्ध से पलायन कर भी नहीं सकते। महाभारत वनपर्व

शेष भाग पृष्ठ २३२ पर

# गीतातत्त्व-चिन्तन

## तेरहवाँ अध्याय (१३/७)

**स्वामी आत्मानन्द**

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

### क्षेत्रज्ञ सत् और असत् से परे

सूत्र-साहित्य को समीकरण-साहित्य कहा जा सकता है। आप देखेंगे विज्ञान के क्षेत्र में एक छोटा-सा equation होता है और उसी equation के माध्यम से बड़ी से बड़ी बात कह दी जाती है। उसी तरह अध्यात्म क्षेत्र में बहुत-सी बातों को संक्षेप में कहने के लिए सूत्र-साहित्य का उपयोग होता है। तेरहवें श्लोक में भगवान हमें क्षेत्रज्ञ की प्रतीति करा दे रहे हैं। कहते हैं ज्ञेय तो एकमात्र क्षेत्रज्ञ ही है। जान लेना, जो कि आत्मज्ञ है; वही जानने योग्य है। वह अनादिकाल से विद्यमान है और वही सबका मूल का कारण है। उसी से सारा संसार उत्पन्न हुआ है और कह दिया कि न तो वह सत् की श्रेणी में आता है और न असत् की श्रेणी में। हमारी बुद्धि के बोध की दो श्रेणियाँ हैं। एक 'है' की श्रेणी है और एक 'नहीं है' की श्रेणी है। संसार में यही दो बातें हैं – 'it is' और 'it is not'. इस बात को सब जगह लागू किया जा सकता है। किसी वस्तु की प्रतीति हमें होती है, तो हम कहते हैं – वह है और उसकी प्रतीति नहीं होती है, तो कहते हैं – वह नहीं है। इन्हीं दो श्रेणियों के माध्यम से ही संसार का हमारा सारा ज्ञान अभिव्यक्त होता है।

भगवान कहते हैं कि यह जो आत्मा है, उसके लिए न तो तुम दावे के साथ यह कह सकते हो कि वह है और न यह कह सकते हो कि वह नहीं है। प्रश्न आया कि जब आत्मा विद्यमान ही है, तब ऐसा कैसे कहा जा सकता है कि वह 'है' की श्रेणी में नहीं है। यहीं पर सूक्ष्म विश्लेषण है। उसे यदि आप पकड़ लें, तो आप दर्शन के चोर को पकड़ लेंगे। भगवान का तात्पर्य तात्त्विक दृष्टि से यह है कि जिस वस्तु के लिए हम 'है' कह देते हैं, वह हमारी इन्द्रियों की पकड़ में आ जाती है। इस तरह आत्मा को तो न हम देख सकते हैं, न कानों से सुन पाते हैं और न हाथों से छू पाते हैं। किसी भी इन्द्रिय से घेर नहीं पाते। अर्थात् आत्मा इन्द्रियों का विषय नहीं है, इसीलिए भगवान ने कहा कि वह सत् से ऊपर है। यदि भगवान कह देते कि वह सत्स्वरूप है, तो हमको लगता है कि वह इन्द्रियों का विषय होगा।

### क्षेत्रज्ञ सर्वव्यापी

**सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।**
**सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।१३।।**
**सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।**
**असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।१४।।**
**बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।**
**सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।१५।।**
**अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।**
**भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१६।।**
**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।**
**ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।**
**इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।**
**मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।१८।।**
**प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावपि।**

**विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।१९।।**
**कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।**
**पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।२०।।**
**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।**
**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।२१।।**
**उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।**
**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।२२।।**
**य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।**
**सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।२३।।**
**ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।**
**अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।२४।।**
**अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुतवान्येभ्य उपासते।**
**तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।२५।।**
**यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।२६।।**
**समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।**
**विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।२७।।**
**समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।**
**न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।२८।।**
**प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।**
**यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।।२९।।**
**यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।**
**तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।३०।।**
**अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।**
**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।३१।।**
**यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।**
**सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।३२।।**
**यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।**
**क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।३३।।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।**
**भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।३४।।**

तत् सर्वतःपाणिपादम् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् (वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला) सर्वतःश्रुतिमत् (सब ओर कान वाला है) लोके सर्वम् आवृत्य तिष्ठति (वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है) सर्वेन्द्रियगुणाभासम् सर्वेन्द्रियविवर्जितम् (सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाला है, सब इन्द्रियों से रहित है) च असक्तम् एव सर्वभृत् (तथा आसक्तिरहित होने पर भी सबको धारण करता है) च निर्गुणम् गुणभोक्तृ (और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगनेवाला है)।

''वह सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुख वाला, सब ओर कान वाला है, वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।''

''सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाला है, सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्तिरहित होने पर भी सबको धारण करता है और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगनेवाला है।''

भूतानाम् बहिःअन्तः (सब भूतों के भीतर-बाहर है) च चरम् अचरम् एव च (और चर अचररूप भी वही है और) तत् सूक्ष्मत्वात् अविज्ञेयम् (वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है) च अन्तिके च दूरस्थम् तत् (तथा अति समीप और दूर में भी वही है) अविभक्तम् च भूतेषु (विभागरहित होने पर भी सम्पूर्ण भूतों में) विभक्तम् इव स्थितम् ज्ञेयम् (विभक्त-सा स्थित जान पड़ता है) च तत् प्रभविष्णु (तथा वही प्राणियों की सृष्टि) च भूतभर्तृ च ग्रसिष्णु (स्थिति और संहार करता है)।

''सब भूतों के भीतर-बाहर है और चर-अचररूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप और दूर में भी वही है।''

''विभागरहित होने पर भी सम्पूर्ण भूतों में विभक्त-सा स्थित जान पड़ता है तथा वही प्राणियों की सृष्टि, स्थिति और संहार करता है।''

तत् ज्योतिषाम् अपि ज्योतिः (वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति) तमसः परम् उच्यते (माया से परे कहा गया है) ज्ञानम् ज्ञेयम् ज्ञानगम्यम् (बोधस्वरूप, जानने योग्य एवं तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है) सर्वस्य हृदि विष्ठितम् (सबके हृदय में स्थित है) इति क्षेत्रम् तथा ज्ञानम् (इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान) च ज्ञेयम् (और क्षेत्रज्ञ को) समासतः उक्तम् (संक्षेप में कहा गया) मद्भक्तः एतत् विज्ञाय (मेरा भक्त इसको जानकर) मद्भावाय उपपद्यते (मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेता है)।

''वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति, माया से परे कहा गया है, बोधस्वरूप, जानने योग्य एवं तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है, सबके हृदय में स्थित है।''

''इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और क्षेत्रज्ञ को संक्षेप में

कहा गया, मेरा भक्त इसको जानकर मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।''

प्रकृतिम् च पुरुषम् उभौ (प्रकृति और पुरुष इन दोनों को) एव अनादी विद्धि च (ही अनादि जान और) विकारात् च गुणान् अपि (रागद्वेषादि विकारों तथा त्रिगुणों को भी) प्रकृतिसम्भवात् एव विद्धि (प्रकृति से उत्पन्न जान) कार्यकरणकर्तृत्वे हेतु: प्रकृति: उच्यते (कार्य और करण का हेतु प्रकृति कही गई है) पुरुष: सुखदु:खानाम् (जीवात्मा सुख दुखों के) भोक्तृत्वे हेतु: उच्यते (भोगने का हेतु कहा गया है)।

''प्रकृति और पुरुष इन दोनों को ही अनादि जान और रागद्वेषादि विकारों तथा त्रिगुणों को भी प्रकृति से उत्पन्न जान।''

''कार्य और करण का हेतु प्रकृति कही गई है, जीवात्मा सुख-दुखों के भोगने का हेतु कहा गया है।''

प्रकृतिस्थ: हि पुरुष: (प्रकृति में ही स्थित पुरुष) प्रकृतिजान् गुणान् भुंक्ते (प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणों को भोगता है) गुणसंग: अस्य (गुणों का संग ही इस जीवात्मा के) सदसद्योनिजन्मसु कारणम् (अच्छी-बुरी योनियों में जन्म का कारण है) अस्मिन् देहे अपि पुरुष: पर: (इस देह में स्थित यह आत्मा परमात्मा ही है) उपद्रष्टा अनुमन्ता भर्ता भोक्ता च (उसे ही साक्षी, अनुमन्ता, भर्ता और भोक्ता) महेश्वर: च परमात्मा इति उक्त: (महेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है)।

''प्रकृति में ही स्थित पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणों को भोगता है, गुणों का संग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म का कारण है।''

''इस देह में स्थित यह आत्मा परमात्मा ही है, उसे ही साक्षी, अनुमन्ता, भर्ता और भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है।''

एवम् पुरुषम् च गुणै: सह (इस प्रकार से पुरुष को और गुणों के सहित) प्रकृतिम् य: वेत्ति (प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्वत: जानता है) स सर्वथा वर्तमान: अपि (वह सब कर्म करता हुआ भी) भूय: न अभिजायते (फिर नहीं जन्मता) आत्मानम् केचित् आत्मना (परमात्मा को कुछ लोग शुद्ध बुद्धि से) ध्यानेन आत्मनि पश्यन्ति (ध्यान द्वारा हृदय में देखते हैं) अन्ये सांख्य योगेन (अन्य लोग ज्ञानयोग के द्वारा) च अपरे कर्मयोगेन (और अन्य कर्मयोग के द्वारा)।

''इस प्रकार से पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्वत: जानता है, वह सब कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता।''

''परमात्मा को कुछ लोग शुद्ध बुद्धि से ध्यान द्वारा हृदय में देखते हैं, अन्य लोग ज्ञानयोग के द्वारा और अन्य कर्मयोग के द्वारा (देखते हैं)।''

तु अन्ये एवम् अजानन्त: (परन्तु अन्य इस प्रकार न जानते हुए) अन्येभ्य: श्रुत्वा उपासते (दूसरे तत्त्वज्ञों से सुनकर उपासना करते हैं) च ते श्रुतिपरायणा: अपि (और वे श्रवणयोगी भी) एव मृत्युम् अतितरन्ति (नि:संदेह मृत्यु को पार कर जाते हैं) भरतर्षभ (हे अर्जुन!) यावत् किञ्चित् स्थावरजंगमम् (जितने भी स्थावर-जंगम) सत्वम् संजायते (प्राणी उत्पन्न होते हैं) तत् क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्धि (उन सबको क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-संयोग से उत्पन्न जान)।

''परन्तु अन्य इस प्रकार न जानते हुए दूसरे तत्वज्ञों से सुनकर उपासना करते हैं और वे श्रवणयोगी भी नि:संदेह मृत्यु को पार कर जाते हैं।''

''हे अर्जुन! जितने भी स्थावर-जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-संयोग से उत्पन्न जान।''

य: विनश्यत्सु सर्वेषु भूतेषु (जो पुरुष नाशवान सब भूतों में) परमेश्वरम् अविनश्यन्तम् समम् (अविनाशी परमेश्वर को समभाव से) तिष्ठन्तम् पश्यति स: पश्यति (स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है) हि (क्योंकि) सर्वत्र समवस्थितम् ईश्वरम् (जो सबमें समभाव से स्थित परमात्मा को) समम् पश्यन् (सर्वत्र देखता हुआ) आत्मना आत्मानम् न हिनस्ति (शरीर नाश द्वारा आत्मा को नष्ट नहीं मानता) तत: पराम् गतिम् याति (वह परम गति को प्राप्त होता है)।

''जो पुरुष नाशवान सब भूतों में अविनाशी परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही यथार्थ देखता है।''

''क्योंकि जो सबमें समभाव से स्थित परमात्मा को सर्वत्र देखता हुआ, शरीर नाश द्वारा आत्मा को नष्ट नहीं मानता, वह परम गति को प्राप्त होता है।''

च य: कर्माणि सर्वश: प्रकृत्या (और जो पुरुष कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति द्वारा) एव क्रियमाणानि पश्यति (ही किया देखता है) तथा आत्मानम् अकर्तारम् पश्यति स: (और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही) यदा भूतपृथग्भावम् एकस्थम् (जब प्राणियों के विभिन्न भावों को एक परमात्मा

में स्थित) च तत: एव विस्तारम् अनुपश्यति (तथा उस परमात्मा से ही प्राणियों का विस्तार देखता है) तदा ब्रह्म सम्पद्यते (तब ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है)।

''और जो पुरुष कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति द्वारा ही किया देखता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है ।''

''जब प्राणियों के विभिन्न भावों को एक परमात्मा में स्थित तथा उस परमात्मा से ही प्राणियों का विस्तार देखता है, तब ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।''

''कौन्तेय (हे अर्जुन!) अनादित्वात् निर्गुणत्वात् (अनादि होने से और निर्गुण होने से) अयम् अव्यय: शरीरस्थ: अपि (यह अविनाशी परमात्मा शरीर में होने पर भी) न करोति न लिप्यते (न कुछ करता है और न लिप्त ही होता है) यथा सर्वगतम् आकाशम् (जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश) सौक्ष्म्यात् न उपलिप्यते तथा (सूक्ष्मता के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही) देहे सर्वत्र अवस्थित: (देह में सर्वत्र स्थित) आत्मा न उपलिप्यते (आत्मा लिप्त नहीं होता)।

''हे अर्जुन! अनादि होने से और निर्गुण होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में होने पर भी न कुछ करता है और न लिप्त ही होता है।''

''जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्मता के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा (देह के गुणों में) लिप्त नहीं होता।''

भारत (हे अर्जुन!) यथा एक: रवि: इमम् (जिस प्रकार एक ही सूर्य इस) कृत्स्नम् लोकम् प्रकाशयति (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है) तथा क्षेत्री कृत्स्नम् क्षेत्रम् प्रकाशयति (उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है) एवम् क्षेत्रक्षेत्रज्ञयो: अन्तरम् (इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को) च भूतप्रकृतिमोक्षम् (तथा कार्य सहित प्रकृति से मुक्त होने को) ये ज्ञानचक्षुषा विदु: (जो लोग ज्ञान नेत्रों से जानते हैं) ते परम् यान्ति (वे परमात्मा को प्राप्त होते हैं)।

''हे अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है।''

''इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को तथा कार्य सहित प्रकृति से मुक्त होने को जो लोग ज्ञान-नेत्रों से जानते हैं, वे परमात्मा को प्राप्त होते हैं।'' **(क्रमश:)**

---

पृष्ठ २२८ का शेष भाग

(धर्म व्याध गीता) में कहा गया है –

**पूर्वं हि विहित कर्म, देहिनं न विमुञ्चति।**

**धात्रा विधिरयं दृष्टो बहुधा कर्मनिर्णये।। (महाभारत वनपर्व, अध्याय २०, श्लोक १०)**

अर्थात् व्यक्ति का पूर्व कर्म कभी पीछा नहीं छोड़ता, इसलिए किसी जीव को कहाँ जन्म देना है, यह निश्चय करते समय विधाता इस बात का ध्यान रखते हैं कि जीव को वहीं जन्म दिया जाये जहाँ यह (मनुष्य, अपने प्रारब्ध को आसानी से भोग ले।

अत: हमें जो स्थितियाँ-परिस्थितियाँ प्रारब्ध से मिली हैं, उनमें सामंजस्य बिठाते हुए हरि-नाम जप करना चाहिए, इसी से कल्याण हो जायेगा। ○○○

---

**मैं यह कर सकता हूँ, यह नहीं कर सकता, ये सब भी कुसंस्कार हैं। मैं सब कुछ कर सकता हूँ। वेदान्त सबसे पहले मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास करने के लिए कहता है। जिस प्रकार संसार का कोई-कोई धर्म कहता है कि जो व्यक्ति अपने से बाहर सगुण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, वह नास्तिक है, उसी प्रकार वेदान्त भी कहता है कि जो व्यक्ति अपने आप पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है। अपनी आत्मा की महिमा में विश्वास न करने को ही वेदान्त में नास्तिकता कहते हैं।**

**– स्वामी विवेकानन्द**

साधुओं के पावन प्रसंग (७६)

# स्वामी बोधानन्द

## स्वामी चेतनानन्द

''एक बार जब स्वामीजी मायावती में निवास कर रहे थे, (स्वामी प्रेमानन्द जी) बाबूराम महाराज ने उनको एक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा था कि वर्षा के दिनों में मठ की सीढ़ी से ठाकुर को भोग ले आने तथा ले जाने में असुविधा होती है। इसीलिए वहाँ पर corrugated iron sheet से एक छत जैसा किया जाये। इससे स्वामीजी बहुत नाराज हो गये। उन्होंने बाबूराम महाराज को फटकारते हुए एक पत्र लिखा। कोलकाता वापस आते समय स्वामीजी चम्पावत के डाक बँगला में एक रात रुके। उनको किसी तरह यहाँ पर स्मरण हो आया कि उन्होंने बाबूराम महाराज को डाँटा है। तब उन्होंने वार्तालाप के बीच में कहा, ''ठाकुर ने जिनकी प्रशंसा की है, मैं उनके भीतर यदि कोई दोष देखता हूँ, तो वह मेरे नेत्रों के दोष हैं।'' ये बातें कहते-कहते स्वामीजी रोमांचित हो गये तथा बार-बार यह बात दुहराने लगे। मैं मूल के प्रति निष्ठावान हूँ, मैं मूल के प्रति निष्ठावान हूँ। यद्यपि मैं सैकड़ों अपराध करूँ, तथापि ये लोग मुझे नहीं छोड़ेंगे। इस पर मुझे पूर्ण विश्वास है। स्वामीजी ने यह बात तीस बार कही।''

''पीलीभीत स्टेशन में स्वामीजी के लिए सेकण्ड क्लॉस का टिकट लिया गया। ट्रेन के सेकेण्ड क्लॉस में दो डिब्बे थे। एक डिब्बा पूरा भरा हुआ था; अन्य डिब्बा में केवल एक ब्रिटिश मिलिटरी ऑफिसर, कर्नल के पदवी वाले थे। कालीकृष्ण महाराज तथा गुप्त महाराज ने कर्नल के डिब्बा में स्वामीजी का सामान रख दिया। कर्नल ने इस पर विरोध किया। उस समय स्वामीजी प्लेटफॉर्म पर टहल रहे थे। उन्होंने उस ओर देखा भी नहीं। विरोधी पार्टी को बलशाली देखकर कर्नल कुछ न बोला। वह स्टेशन मास्टर के पास गया तथा स्वामीजी को वहाँ से हटाने के लिए कहा। इसी बीच स्वामीजी गाड़ी में चढ़ गये। स्टेशन मास्टर ने आकर स्वामीजी को अन्य डिब्बा में जाने के लिए कहा। स्वामीजी ने चेहरा लाल करके उतेजित होकर कहा, ''तुमने यह कहने का साहस कैसे किया? तुम्हारा नाम और संख्या दो।'' भय से स्टेशन मास्टर जल्दी उतर गया। उसका कहीं कोई अता-पता नहीं लगा। स्वामीजी के डिब्बा में ही कर्नल भयभीत होकर एक कोने में बैठ गया।

''बलराम बसु के मकान में, स्वामीजी ने कालीकृष्ण महाराज (स्वामी विरजानन्द जी) को ढाका में श्रीरामकृष्ण देव का प्रचार कार्य करने के लिए कहा। कालीकृष्ण महाराज ने इस पर असहमति प्रकट करते हुए कहा, ''हमलोगों को तो अभी तक आत्मसाक्षात्कार हुआ नहीं, हमलोग क्या प्रचार करेंगे? मुझे ऐसा लगता है कि अभी ध्यान-भजन करके कुछ आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त कर लें, तत्पश्चात् प्रचार हेतु जायेंगे।'' उस पर स्वामीजी ने उत्तेजित होकर कहा, ''जो अपनी मुक्ति के लिए व्यग्र होगा, वह नरक में जायेगा और जो अपनी मुक्ति-फुक्ति की चिन्ता न करके अन्य की मुक्ति के लिए चिन्तन करेगा, वह बहुत शीघ्र उन्नति करेगा।'' आवेश में आकर स्वामीजी तर्जन-गर्जन करते रहे और बरामदा में एक ओर से दूसरी ओर टहलते रहे।

''स्वामीजी कई बार अकस्मात् कोई कार्य कर देते थे, जैसे कोई पूर्वसंकेत हो। Egypt में यात्रा करते समय अकस्मात् उन्होंने मैक्लॉउड से कहा, ''मैं भारत वापस जाऊँगा। जितना शीघ्र हो सके जहाज ठीक करो।'' मिस मैक्लॉउड ने बहुत पैरवी करके एक बर्थ की व्यवस्था की। उस समय स्वामीजी की भारत में आवश्यकता थी। क्योंकि भारत में कैप्टन सेवियर की मृत्यु हुई थी।

''लाटू महाराज बहुत समय तक सोये-सोये ही जप-ध्यान किया करते थे। यद्यपि बाहर से देखने में ऐसा लगता कि वे सो रहे हैं, तथापि वे जप-ध्यान करते थे।

''स्वामीजी ने एक दिन राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) की फूलों से पूजा की और महाराज स्थिर होकर उसे ग्रहण कर रहे थे। हमारे शास्त्र कहते हैं – गुरुवत् गुरुपुत्रेषु।

''राजा महाराज के सम्बन्ध में हरि महाराज ने कहा था ''वे एक मिनट के अन्दर वातावरण बदल दे सकते थे। उनकी ऐसी क्षमता थी कि एक निश्चित क्षेत्र के भीतर जो लोग रहते, उनलोगों से वे जो चाहते वही करा सकते थे। उनके जप-ध्यान करने से वे लोग भी जप-ध्यान करते थे, उनके हँसने से वे लोग भी हँसते थे, उनके वार्तालाप करने पर उनलोगों की भी बात करने की प्रवृति होती थी।

''सुप्रसिद्ध लेखक देवेन बसु एक दिन महाराज के पास

गये। महाराज के प्रति उनकी अधिक श्रद्धा नहीं थी और वे महाराज के उच्च आध्यात्मिकता के विषय में जानते नहीं थे। परवर्ती समय में, अनेक पारिवारिक समस्याओं के कारण देवेन बाबू बहुत अशान्ति में थे। तब एक दिन वे महाराज के पास गये। महाराज ने अपने आप उनकी छाती पर हाथ फेर दिया। इससे उनकी सारी अशान्ति दूर हो गयी। यह घटना बेलूड़ मठ में ऊपर तल्ला में महाराज के कमरे में घटित हुई थी। तदुपरान्त वे महाराज के अनन्य भक्त हो गये।

स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज

''(स्वामी प्रेमानन्द जी) बाबूराम महाराज के प्रत्येक कार्य के भीतर उनका साधुत्व प्रकट होता था। वे पूरा दिन बहुत-सा कार्य करते थे। सबसे पहले वे जग जाते तथा सबके सो जाने पर वे सोने के लिए जाते थे। वे दोपहर में विश्राम नहीं करते थे। यदि करते, तो बहुत कम करते थे। वे सभी कार्य ठाकुर के लिए कर रहे हैं, देखने से यह स्पष्ट समझ में आ जाता था। उनका सामान्य कार्य भी सर्वांग सुन्दर होता था। साधारण कर्म के भीतर भी एक अनुशासन प्रकट होता था। वे ठाकुर की बातें दिन-रात बोलते थे तथा बोलते-बोलते भावुक हो जाते थे। ठाकुर के पार्षदों में वे ही श्रीठाकुर की बातें सबसे अधिक बोलते थे। राजा महाराज ठाकुर की बातें सबसे कम कहते थे। ठाकुर की बातें बाबूराम महाराज बहुत उत्साह से कहते थे। 'उनकी कृपा होने से होगा' यह बात वे नहीं कहते थे। उनका यह ज्वलन्त विश्वास था कि जो ठाकुर के पास आया है वह मुक्त हो जायेगा, वे धन्य हैं। उनकी प्रत्येक बातें ज्वलन्त अग्नि के समान थीं। यद्यपि उनका स्वभाव बहुत ही मधुर था, तथापि जब वे श्रीरामकृष्ण के विषय में बातें करते थे, उस समय उनकी बातें तेजोमय होती थीं। उनका गरम स्वभाव नहीं था। वे बहुत आसानी से लोगों के भीतर बहुत उत्साह ला देते थे और वे दिन-रात वही कार्य करते थे।

''बाबूराम महाराज अत्यन्त निरभिमानी थे। उनमें अहंकार का लेशमात्र भी नहीं था। वे श्रीरामकृष्ण के हाथों की कठपुतली थे। एक बार ऐसा हुआ कि उनके मन में थोड़ा-सा अहंकार का भाव आ गया। बेलूड़ मठ के प्रांगण में ठाकुर ने उनको दर्शन दिया और कहा, ''चाहे जितना भी नाचो और कूदो, रस्सी तो मेरे हाथ में ही रहेगा।'' बन्दर-नृत्य की उपमा की तरह। बाबूराम महाराज लज्जा और दुख से ठाकुर के सामने हाथ जोड़कर बार-बार क्षमा-याचना करने लगे। ऐसा लग रहा था कि जैसे ठाकुर उनसे दूर होते जा रहे हैं। बाबूराम महाराज बारम्बार उनकी ओर जाने का प्रयास कर रहे हैं। महापुरुष महाराज दूर से स्वामी प्रेमानन्द महाराज को देख रहे थे। तत्पश्चात् महापुरुष महाराज ने बाबूराम महाराज से पूछा कि क्या हुआ था। तब बाबूराम महाराज ने इस घटना को उनको बताया था।

''बाबूराम महाराज निरामिष खाते थे। साधुगण आमिष खाते हैं, यह उनको पसन्द नहीं था। ठाकुर ने उनको स्वप्न में इसके लिए बहुत डाँटा। उन्होंने उसके दूसरे दिन अहंकार दूर करने तथा पश्चाताप करने के लिए रसोई-घर के पश्चिम की ओर जाकर आमिष अपने मुँह में डाला।

''सूर्य महाराज (स्वामी निर्वाणानन्द जी) बर्फ को हथौड़ी से तोड़ रहे थे। तोड़ते समय बर्फ चूर-चूर हो जा रहा था, इसलिए बाबूराम महाराज ने उनको डाँटा। बाबूराम महाराज स्वयं बर्फ तोड़ने के लिए आगे आये और सूर्य महाराज से हथौड़ी माँगा। सूर्य महाराज ने क्रोधित होते हुए कहा, ''आप यहाँ पर क्यों आये? यहाँ से चले जाइए।'' बाबूराम महाराज समझ गये कि सूर्य बहुत क्रोधित हो गया है। वे चले गये। बाद में अन्य समय पीछे से आकर सूर्य महाराज को पकड़कर कहा, 'तुमने मेरे ऊपर क्रोध किया है?'

सूर्य महाराज ने कहा, 'हाँ। आप यदि वह कार्य करेंगे, तो लोग हमारे बारे में क्या सोचेंगे?' इतना निरभिमानी थे बाबूराम महाराज।

'' 'साधु का राग पानी पर दाग।' अर्थात् साधु का क्रोध वैसा है, जैसा जल पर खींची हुई रेखा। बाबूराम महाराज का क्रोध भी क्षण भर में ही विलीन हो जाता था। मठ के अन्यान्य संन्यासी इसको जानते थे। बाबूराम महाराज ने एक दिन राजा महाराज के पास जाकर कहा, 'महाराज, ये बच्चे मुझसे थोड़ा-सा भी भय नहीं करते।'

''बाबूराम महाराज बहुत त्यागी थे। उनके पास सामान्य कपड़ा-वपड़ा तथा बन्डी-कुर्ता था। ठण्डा का भी उनके

पास बहुत कम वस्त्र था। वे बहुत ही कम भोजन करते थे, किन्तु इसके बावजूद असम्भव जैसा कार्य कर सकते थे। यदि कुछ अच्छा भोजन उन्हें दिया जाता, तो वे उसे स्वयं ग्रहण नहीं करते, अन्य किसी को दे देते थे। वे भोजन के बारे में अत्यन्त संयमी थे।

'कृष्णनगर में बाबूराम महाराज व्याख्यान देने के लिए गये। उन्होंने पहले ही कहा, 'मैं मूर्ख व्यक्ति हूँ।' तदुपरान्त जब उन्होंने रामकृष्ण के सम्बन्ध में बोलना आरम्भ किया, तब ऐसा लगा जैसे ज्वालामुखी निकल रहा है तथा सब लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। उनकी भाषा बहुत सरल थी, बातचीत की शैली थी, किन्तु उसके भीतर ऐसा जोर था, जैसे आग बरस रहा हो। उनके प्रवचन से ऐसा वातावरण तैयार हुआ कि श्रोतागण सम्मोहित हो गये। बाद में सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) का व्याख्यान था। सुधीर महाराज एक विद्वान तथा वक्ता थे, किन्तु वे घबरा गये तथा बोलते समय हड़बड़ी करने लगे।

''एक बार शशी महाराज (स्वामी रामकृष्णानन्द जी) मद्रास से बेलूड़ मठ आये। उन्होंने सुना कि बाबूराम महाराज बहुत देर तक (प्रात: १० बजे तक) ध्यान कर रहे हैं। उन्होंने सेवकों से कहा, ''सावधान, क्या कर रहे हो? महाराज को इतना देर तक ध्यान करने दे रहे हो? सर्वनाश!'' (अर्थात् वे शीघ्र ही संसार छोड़कर चले जायेंगे) शशी महाराज ने स्वयं जाकर महाराज को धक्का देकर उनका ध्यान भंग कर दिया।

''स्वामीजी अमेरिका में एक दिन ध्यान की कक्षा ले रहे थे। ध्यान करते-करते वे समाधि में चले गये तथा बाह्यज्ञान शून्य हो गये। जो लोग उपस्थित थे, वे स्वामीजी को पकड़कर अन्य कमरे में ले गये। बहुत समय बाद उनका बाह्यज्ञान वापस आया।

''बाबूराम महाराज ने सूर्य महाराज को किसी भक्त की जपमाला बनाने के लिए दिया। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि जपमाला बनाने से भक्त द्वारा उस माला से जप करने पर उनको उसका आधा फल मिलेगा। इसके कुछ दिनों के बाद ही एक अन्य दिन बाबूराम महाराज ने अपनी स्वयं की माला बनाने के लिए दी। सूर्य महाराज ने कहा, ''आपको इससे जप करने का आधा ही फल मिलेगा।''

बाबूराम महाराज ने पहले कहा, ''ओ, दे, दो, वापस दे दो।'' यह कहकर उन्होंने माला वापस ले लिया। कुछ क्षण पश्चात् उन्होंने जपमाला सूर्य महाराज को देते हुए, ''ठीक है, जा, सम्पूर्ण फल तेरा।''

''पूर्ण बाबू बहुत अन्तर्मुखी स्वभाव के थे। वे बातें बहुत कम करते थे। यहाँ तक कि आपने प्रश्न किया पर उन्होंने उसका उत्तर ही नहीं दिया। जैसे उनका मन अन्य लोक में था। उस तरह का आध्यात्मिक भाव एक तो राजा महाराज के भीतर देखा जाता था और दूसरा कुछ मात्रा में पूर्णबाबू के भीतर। हमलोगों ने ठाकुर के किसी अन्य शिष्य के भीतर इस प्रकार का भाव नहीं देखा।

''ब्राह्मसमाज के नेता तथा सिटी कॉलेज, कोलकाता के प्रतिष्ठाता आनन्द मोहन बसु, कोलकाता में स्वामीजी द्वारा दिये गये सभी व्याख्यान सुनने जाते थे।

''एक दिन सिस्टर निवेदिता गाड़ी से कहीं जा रही थीं। शुकिया स्ट्रीट में गाड़ी से दबकर एक कुत्ते का बच्चा घायल हो गया। उसको बचाने के लिए उन्होंने निकटवर्ती दुकान से दूध खरीदकर पिलाया तथा बहुत समय तक उसकी सेवा करती रहीं। निवेदिता सर जे.सी.बोस के साथ दार्जिलिंग में एक ग्लैशियर देखने गईं। उन्होंने देखा कि बोस का चालक मार्ग में शीत से कष्ट पा रहा है। निवेदिता ने अपना कोट उसको दे दिया।

''निवेदिता अत्यन्त तेजस्विनी थीं। भारतवर्ष को अत्यन्त प्रेम करती थीं। निवेदिता जैसा प्रेम भारतवर्ष से करती थीं, उतना प्रेम अन्य कोई विदेशी करता होगा, इसमें सन्देह है। निवेदिता अपना आलेख किसी को संशोधन करने नहीं देती थीं, किन्तु रमानन्द चट्टोपाध्याय (प्रवासी एवं मॉर्डन रिव्यू के सम्पादक) को संशोधन करने की अनुमति देती थीं। वे उनसे कहती थीं, 'मुझे आपके न्याय पर विश्वास है।'

''महापुरुष महाराज ने डॉक्टर अजित बाबू के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा, ''तुम गरीबों और अभावग्रस्तों की सेवा करो।'' दीर्घकालीन बीमारी के बावजूद भी वे किसी दिन अवसादग्रस्त नहीं हुये।

''बलराम मन्दिर में शरत महाराज जिस कमरे में सोते थे, मैं भी उसी कमरे में सोता था। प्रत्येक रात्रि को सोने के पहले, शरत् महाराज बिस्तर पर कुछ समय बैठे रहते थे। वे अपने सम्पूर्ण दिन का विश्लेषण करते, तत्पश्चात ध्यान करते थे।

''बाबूराम महाराज ने एक बार स्वयं मुझसे कहा था, 'ध्यान करके मन्दिर से बाहर आने के पहले मैं 'श, ष, स' का १०८ बार जप करता हूँ।'

''स्वामीजी ने एक बार मठ में सख्त नियम बनाया कि सभी को नियत-समयों पर जप-ध्यान करना होगा तथा सभी कार्यों को नियमानुसार करना होगा। एक दिन एक भक्त ठाकुर-नैवेद्य के लिए आमिष लाया। किसी-किसी की इच्छा हुई कि दोपहर में ही ठाकुर को भोग दिया जाये, किन्तु उससे भोग के समयानुसार विलम्ब हो जायेगा। इसीलिए स्वामीजी ने कहा कि रात्रि में भोग दिया जायेगा।

''एक बार किसी ने शरत् महाराज के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया। इस पर किसी ने शरत् महाराज से पूछा, ''आपके मन में तो बहुत कष्ट हुआ होगा?'' शरत् महाराज ने उत्तर दिया, 'मुझे क्या कष्ट होगा? मेरा मन और मेरा हृदय कहने के लिए कुछ भी नहीं है। मैंने मन-हृदय-बुद्धि सब कुछ ठाकुर के श्रीचरणों में समर्पित कर दिया है। अब सब कुछ उनका है।'

''हरि महाराज ने वृन्दावन में मुझे पत्र लिखा, ''यदि तुम तीव्र साधना करते हो, तो कुछ भी क्यों न खाओ तथा जिस किसी के हाथ से क्यों न खाओ, इससे तुम्हारी कोई क्षति नहीं होगी। यदि साधन-भजन में कमी करोगे, तो तुम्हारी आहार कितना भी शुद्ध-सात्विक क्यों न हो, उससे तुमको कुछ लाभ नहीं होगा।''

''कनखल में एक दिन सन्ध्या समय हरि महाराज के कमरे में झाँक कर देखा कि वे विश्राम कर रहे हैं। खिड़की के पल्ले से दिखाई दे रहा था कि वे सो रहे हैं, किन्तु उनके हाथ में उनकी जपमाला है और वे जप कर रहे हैं।

''एक दिन मैंने शरत् महाराज से पूछा कि उनको सर्वत्र ब्रह्म-दर्शन हुआ है कि नहीं? उन्होंने कहा कि उनको हुआ है। तब मैंने उनसे पूछा, जिस आलमारी का सहारा लेकर आप बैठे हुए थे, क्या उस में भी आपने ब्रह्मदर्शन किया। उन्होंने कहा, हाँ, वे उसमें भी ब्रह्मदर्शन करते हैं।

''एक दिन मैंने उनसे (शरत् महाराज) पूछा, ध्यान करते समय हमारा मन चारों दिशाओं में भटकता रहता है। क्या उनका भी वैसा होता है? उन्होंने कहा, नहीं, उनका ऐसा नहीं होता। जैसे ही वे ध्यान करने के लिए बैठते हैं, उनका मन स्थिर तथा एकाग्र हो जाता है।

''शरत महाराज ने कहा था कि ठाकुर कहा करते थे कि जिसने इस भजन के अर्थ को अच्छी तरह हृदयंगम कर लिया है, उसने आध्यात्मिक जीवन में सब कुछ उपलब्ध कर लिया है –

**नाथ तुम ही सर्वस्व हमार, प्राणाधार जीवन-सार।**
**तुम बिन नाही अपना कोई तीनों लोक मँझार।।**
**सुख-शान्ति तुम्हीं सहाय-संबल, संपद-वैभव-ज्ञान-बुद्धि-बल।**
**तुम्हीं वासगृह विश्रान्ति-स्थल, स्वजन-मित्र-परिवार।।**
**तुम इहकाल, तुम्हीं परकाल, स्वर्ग-मोक्ष तुम ही जगपाल।**
**तुम्हीं शास्त्र-गुरु, भक्त-कल्पतरु, तुम चिरसुख-आगार।।**
**तुम ही साधन, तुम्हीं साध्य हो, सृजनहार परम आराध्य हो।**
**दंडदाता पितु, मात स्नेहमयि भवजलधि-कर्णधार।**

एक दिन सान्याल बाबू ने शरत महाराज से कहा, 'देखो शरत, गाँधीजी कितना कार्य कर रहे हैं, उसका कितना प्रभाव है! तुमलोगों ने क्या किया?' इस पर अत्यन्त विरक्त होकर शरत् महाराज ने कहा, 'तुम क्या कहते हो? भगवान जिसके द्वारा जो करायेंगे, वह तो वही करेगा। भगवान गाँधीजी के द्वारा जो करायेंगे, गाँधीजी तो वही करेंगे। मैं उतना ही करूँगा, जितनी योग्यता तथा क्षमता उन्होंने मुझे दी है। उसमें तुलनात्मक विश्लेषण क्यों?'

''स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने एक बार कहा था, 'ईश्वर के ऊपर वास्तविक निर्भरता क्या है, यह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। कोई बुद्धि से भी समझ नहीं सकता। जब सच में ईश्वर-निर्भरता आयेगी, तब व्यक्ति अपने अन्त:करण में ही उसे अनुभव कर सकेगा। वह एक विलक्षण वस्तु है !'

''एक व्यक्ति बहुत साफ-सुथरा रहता था। राजा महाराज ने उससे कहा था, ''क्या ठाकुर केवल मन्दिर में ही रहते है? जहाँ कहीं भी स्वच्छता, सौन्दर्य है, वहाँ वे रहते हैं।''

''हरि महाराज कहते थे, 'जो पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता है, उसके ही नीचे गिरने की सम्भावना होती है। किन्तु जो व्यक्ति वृक्ष के नीचे सोया हुआ है, उसके गिरने का कोई भय नहीं रहता। वह गिरेगा, तो गिरेगा कहाँ?'

''एक बार केदारबाबा ठाकुर-उत्सव के समय जयरामवाटी में थे। उन्होंने श्रीमाँ सारदा देवी से पूछा, 'हम ठाकुर के उत्सव के लिए क्या करें?' श्रीमाँ ने कहा, 'वही तो बेटा, हम क्या करेंगे? न ही मुझमें भक्ति है और न ही शक्ति, तो उत्सव कैसे करूँ।' (उसके दूसरे दिन बाँकुड़ा के एक भक्त विभूति घोष बैलगाड़ी से प्रचुर खाद्य-सामग्री लेकर उपस्थित हुए और बहुत धूमधाम से ठाकुर का उत्सव सम्पन्न हुआ।

**(क्रमशः)**

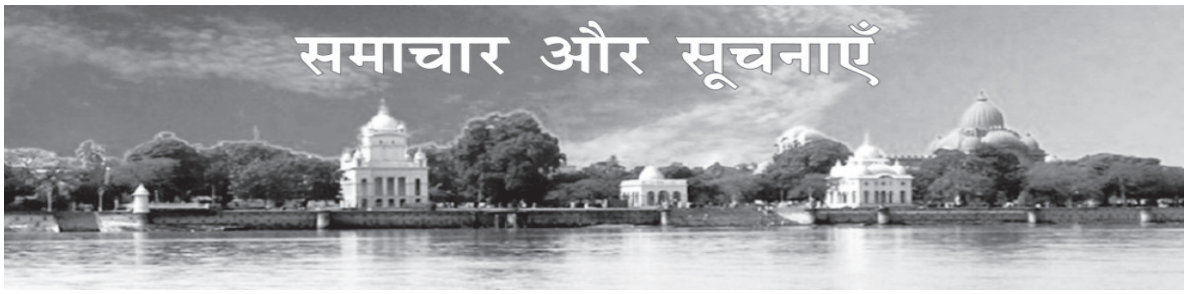


## विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर

स्वामी विवेकानन्द जी की १६१वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा २०२४-२५ में विभिन्न कार्यक्रम आयोजित हुये –

### विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

१८ नवम्बर, २०२४ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – '**स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन।**' इसमें शासकीय नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की छात्रा कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विद्यापीठ, कोटा रायपुर की छात्रा कु. डिम्पल हरपाल ने द्वितीय और वहीं की छात्रा कुमारी वीरालक्ष्मी ने तृतीय और एल. वमशी कुमार, दिशा कॉलेज, कोटा, रायपुर, कुमारी राधिका जेठी, दूधाधारी बजरंग महाविद्यालय, रायपुर और दिव्यांश चन्द्रा, विवेकानन्द शि.सं ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर के राजनीति विज्ञान के प्रा. डॉ. सुभाष चन्द्राकर जी ने की।

१९ नवम्बर को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसमें शास. नागार्जुन विज्ञान महा. रायपुर की कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, विद्यापीठ, कोटा रायपुर की छात्रा कु. डिम्पल हरपाल ने द्वितीय, दिशा कॉलेज के एल. वमशी कुमार ने तृतीय और प्रो. हेमंत बारले, रूँगटा कॉलेज और विवेकानन्द शि.संस्थान कोटा, रायपुर की कु. वीरालक्ष्मी ने सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं.रवि.शु. वि. के जीवविज्ञान विभागाध्यक्ष डॉ. एस. के. जाधव जी ने की।

२० नवम्बर को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – '**इस सदन की राय में मन की दुर्बलता सभी असफलताओं का कारण है।**' शास. नागार्जुन वि. महा. की छात्रा कु. श्रीप्रिया तिवारी ने प्रथम, विवेकानन्द शिक्षण संस्थान, कोटा के वैभव गौतम ने द्वितीय, रूँगटा कॉलेज भिलाई के हेमंत बारले ने तृतीय और वि.शि.सं. कोटा के विशाल बर्मन और मनीषा चौरसिया ने तृतीय स्थान प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता रवि. शु.वि. के अर्थशास्त्र विभागाध्यक्ष श्री रवीन्द्र ब्रह्मे जी ने की।

२१ नवम्बर को '**इस सदन की राय में जातिवाद व्यक्ति की उन्नति में बाधक है।**' पुलिस पब्लिक स्कूल, पेन्शन बाड़ा, रायपुर की छात्रा कु. उन्नति शर्मा ने प्रथम, कांगेर वेली एकेडमी, रायपुर की कु. रितिका गुप्ता ने द्वितीय, दिशा कॉलेज, कोटा, रायपुर की छात्रा कु. स्तुति चन्द्रकार ने तृतीय और विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उ.मा. विद्यालय, कोटा, रायपुर के छात्र आर्यन खन्ना और श्री गुजराती उ.मा.शा. रायपुर की कु. पायल साहू ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता रवि. वि. के शारीरिक शिक्षा विभागाध्यक्ष प्रो.राजीव चौधरी ने की।

२२ नवम्बर को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें कांगेर वेली एकेडमी, रायपुर की छात्रा कु. अवनी मित्तल ने प्रथम, गुजराती उ.मा.शा. रायपुर की छात्रा कु. तारणी नायक ने द्वितीय, गुजराती उ.मा.शा. रायपुर की छात्रा कु. पायल मेहता ने तृतीय और पुलिस पब्लिक स्कूल रायपुर की कु. उन्नति शर्मा और दिशा कॉलेज की कु. शुभ्रता मेहर और विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उ.मा. विद्यालय कोटा, रायपुर के आर्यन खन्ना, ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं. रवि. वि. रायपुर के समाजशास्त्र विभाग के प्रा. प्रो. एल.एस गजपाल जी ने की।

२३ नवम्बर, २०२४ को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण

प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय था – '**शक्ति के सन्देशवाहक स्वामी विवेकानन्द।**' विवेकानन्द विद्यापीठ के ओमकार कोसले ने प्रथम, मोहन मनहरे और आर्यन खन्ना ने द्वितीय, कु. उन्नति शर्मा ने तृतीय और दिशा कॉलेज की कु. दिया डे और श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की कु. नन्दिता वासुदेव ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान के पूर्वनिदेशक डॉ. मुकुन्द हमबर्डे ने की।

२४ नवम्बर को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' का विषय था – '**स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रीय जागरण।**' इसमें श्रीरामकृष्ण विद्यालय, मंगल बाजार, रायपुर की छात्रा कु. राधिका तिवारी ने प्रथम, पुलिस पब्लिक स्कूल, रायपुर की कु. सुकुति शर्मा ने द्वितीय, विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के पूरब दीवान ने तृतीय, विवेकानन्द विद्यापीठ के तनिष्क परते और गुजराती उ.मा. शाला, रायपुर की मीनल पटेल और विवेकानन्द विद्यापीठ के विश्वजीत भार्गव ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता शा.नागार्जुन विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर की रक्षा अध्ययनशाला के विभागाध्यक्ष प्रो. गिरीशकान्त पाण्डेय जी ने की।

२५ नवम्बर को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' थी। विषय था – '**इस सदन की राय में संसार में बलवान की ही पूजा होती है।**' इसमें कांगेर वेली एकेडमी, रायपुर के आरूष शर्मा ने प्रथम, कु. सुकुति शर्मा ने द्वितीय और कांगेर वेली एकेडमी के अर्णव चौधरी ने द्वितीय, विवेकानन्द विद्यापीठ के सत्यम भारद्वाज ने तृतीय, दिशा कॉलेज की कु. जाह्नवी केडिया और महर्षि विद्या मन्दिर-२, रायपुर की कु. ईशा विश्वास और विवेकानन्द विद्यापीठ के शैलेन्द्र कुमार ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता नाक-कान-गला विशेषज्ञ डॉ. विपल्व दत्ता ने की थी।

२६ नवम्बर को 'अन्तर्प्राथमिक पाठशाला पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें स्वामी विवेकानन्द सीनियर सेकेन्डरी स्कूल, चौबे कॉलोनी रायपुर के हिमाक्ष वर्मा ने प्रथम, महर्षि विद्या मन्दिर-२, रायपुर की कु. गौरिका तिवारी ने द्वितीय, श्रीरामकृष्ण विद्यालय, रायपुर की कु. जीनत परवीन ने तृतीय, विवेकानन्द विद्यापीठ के ओरफ कुरें और दिशा कॉलेज की कु. अनिष्का ठाकुर ने प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त किये। इस सत्र की अध्यक्षता पं.रवि. शु.वि.वि, की मनोविज्ञान विभाग की प्रा. डॉ. मीता झा ने की।

सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

### श्रीमद्भागवत-प्रवचन आयोजित हुआ

२ जनवरी, २०२५ से ८ जनवरी तक प्रतिदिन सन्ध्या ७ से ९ बजे तक वृन्दावन से पधारे भागवत उपासक पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी के 'रास लीला में आध्यात्मिकता' पर भक्तिपूर्ण मार्मिक और सारगर्भित प्रवचन हुए।

### राष्ट्रीय युवा दिवस और पुरस्कार-वितरण समारोह

**१२ जनवरी, २०२५** को १० बजे से १२ बजे तक रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्वलन से हुआ। आश्रम के छात्रों ने देशभक्ति गीत प्रस्तुत किये। विभिन्न वर्ग के भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त छात्र-छात्राओं ने व्याख्यान दिये। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉ. रमन सिंह, विधानसभा-अध्यक्ष, छत्तीसगढ़, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, डॉ. एस. के सिंह, पूर्व कुलपति, मैट्स विश्वविद्यालय और बस्तर विश्वविद्यालय ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। मुख्य अतिथि डॉ. रमन सिंह जी और डॉ. एस. के. सिंह जी के कर-कमलों द्वारा विभिन्न प्रतियोगिताओं में विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किये गये। सभा की अध्यक्षता आश्रम के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने की। इसमें विभिन्न शिक्षण संस्थानों के ३०० छात्र-छात्राओं, शिक्षकों और प्रबुद्ध नागरिकों ने सोत्साह भाग लिया। सभा का संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने और धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।